TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182352

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. [illegible] Accession No. [illegible]

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

मीराँ
की
काव्य कला और जीवनी

लेखक
प्रो० नारायण शर्मा
एम० ए०

प्रकाशक
स र स्व ती पु स्त क स द न
मोती कटरा, आगरा—३

प्रकाशक :
प्रतापचन्द जैसवाल

संचालक :
सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा—३

प्रथम संस्करण :
एक हजार प्रतियाँ

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक :
राज प्रिंटिंग प्रेस, धूलियागंज आगरा-३

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

१. मीराँ और उनका युग	१
२. मीराँ के जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य	८
३. मीराँ का व्यक्तित्व	१८
४. मीराँ की प्राप्त साहित्यिक सामग्री	२७
५. मीराँ-साहित्य के मूल प्रेरणा स्त्रोत	३१
६. मीराँ की प्रेम-साधना	३६
७. मीराँ की विरह-वेदना	४५
८. मीराँ की भक्ति भावना	५७
९. मीराँ और सम्प्रदायिक चिन्तन	६५
१०. मीराँ के साहित्य में गीति तत्व	७०
११, मीराँ के साहित्य मे प्रकृति चित्रण	७६
१२. मीराँ के साहित्य में रहस्यवाद	८१
१३. मीराँ का काव्य सौन्दर्य	८६
१४. मीराँ का कला पक्ष	८९
१५. मीराँ के साहित्य मे सांस्कृतिक चित्रण	९४
१६. मीराँ नाम और उसकी व्युत्पति और मीराँ सम्प्रदाय	१०१
१७. लोक साहित्य में मीराँ	१०६
१८. मीराँ के साहित्य में संगीत	१०८

१

मीराँ और उनका युग

"Literature is only one of the many channels in which the energy of age discharges it self in its Political movment, a religous that, Philosophical speculation and art. We have same energy over flowing in to other form of expression."[1]

विभिन्न साधनों में साहित्य ही एक ऐसा साधन है जिसमें काल विशेष की स्फूर्ति अपनी अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है। यही स्फूर्ति परिप्लावित होकर राजनीतिक आन्दोलन, धार्मिक विचार, दर्शन और कला के रूप में प्रगट होती है। साहित्य युग-चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए जीवन और समाज को विकास की ओर अग्रसर करता रहता है। साहित्य का सुव्यवस्थित रूप से अध्ययन करने के लिये व्यावहारिक दृष्टि से उसका काल विभाजन कर दिया जाता है। साहित्य के किसी एक काल और दूसरे काल के बीच में विशेष सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती जैसा सुधीन्द्र का मत है "किसी एक काल के अनन्तर दूसरे काल का किस समय उदय हुआ, अविभाव हुआ यह कहना दुष्कर होता है। रात्रि के आने के पहिले संध्या में उसकी श्यामल छाया झलकने लगती है और दिन के आने के पहिले उषा में उसका उज्जवल आभास-नवीन काल भी इसी प्रकार आने से पहिले अपनी छिपी हुई शक्तियों को संचालित करने लगता है और प्राचीन काल अपनी शक्तियों को समाप्त करता हुआ नवीन के बाहुओं में पर्यवसित हो जाता है। अतः दो कालों के बीच में सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती, जिस प्रकार दिन और रात्रि के होने वाले पर्यवसन को स्थूल रेखाओं के द्वारा नहीं बताया जा सकता।"[२]

---

१. study of literature—Henry Hudson.

२. हिन्दी कविता में युगान्तर—सुधीन्द्र,

भक्ति काल के नामकरण और समय के संबंध में अधिकांश विद्वान एक मत हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "भक्ति काल का समय वि० सं० १३७५ से वि० सं १७०० तक माना गया है।"[१] यह भारतीय जीवन में भक्ति की प्रधानता का युग था। प्रत्येक कौने से ईश वन्दना के स्वर सुनाई दे रहे थे।

भक्ति की यह भावना भारतीय जीवन मे युगों से चलती आ रही है। परन्तु कुछ विद्वानों ने इस पर आक्षेप उठाया है और उन्होंने भक्ति कि इस भावना की पृष्ठ-भूमि को उस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. सर जार्ज गिर्यसन महोदय का मत है कि हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आन्दोलनों से अधिक व्यापक और विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा हो। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भाषा देश का विषय हो गया था बिजली की चमक के समान समस्त प्राचीन धार्मिक मतों के अन्धकार के उपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहां से आई।[२]

२. कुछ विद्वानों का यह मत है कि हिन्दू जनता पर मुसलमानों के अत्याचार बहुत अधिक बढ़ने लगे। जनता अपनी पराजय के कारण निराशा और पलायान की और झुकी। इस समय हिन्दू जनता का पतन हो रहा था। समस्त जन-जीवन के विकास के मार्ग बन्द हो चुके थे। ऐसी दशा में जनता के पास एक मात्र ईश्वर का ही संबल रह गया था, बस उसकी ही उपासना प्रारंभ हुई।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की विचार धाराएं विवाद का विषय रही हैं। भक्ति-काल की यह चेतना न तो समाज में "अचानक बिजली के समान'; किसी अनजाने प्रदेश से आई थी, न वह परास्त हिन्दू जनता की निराशावादी विचारों की प्रतीक थी। भक्ति की यह चेतना युगों से अपनी पृष्ठभूमि का निर्माण कर रही थी अतः—

१. ईसा से इस भक्ति भावना को संबधित करना तर्क हीन होगा। भक्ति की यह भावना अचानक बिजली की तरह भी कहीं से नहीं आई। ईसा से भी युगों से पहिले हमारी भी भक्ति परम्परा इतने सुरक्षित रूप में मिलती है कि किसी अन्य के विषय में सोचने का प्रश्न ही नहीं रह जाता।

२. जहां तक मुसलमानों के आक्रमण और भारतीय भक्ति का संबंध है, हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मुसलमानों के अत्याचार उत्तरी भारत में हो रहे थे।

---

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुल्क पृ० १।

४. Modren vernacular literature. सर जार्ज गियर्सन।

परन्तु भक्ति का यह आन्दोलन हमें दक्षिण में बहुत तीव्र गति से फैलता हुआ दिखाई देता है। वहीं से कुछ अंशों तक भक्ति की यह भावना उत्तर में आई। अस्तु।

भक्ति काल और मीरॉं का अध्ययन करने से पहिले हमें इस युग की विभिन्न परिस्थितियो को देख लेना चाहिये। व्यक्ति जिस युग मे अपने साहित्य का निर्माण करता है उस युग की चिन्तन धाराओं को अपने जीवन अनुभव और व्यक्तित्व में ढाल कर नवीन रूप समाज के सामन प्रस्तुत करता है। साहित्य और व्यक्ति का व्यक्तित्व भी सामाजिक चेतना पर अपना प्रभाव डालता है। हम मीरॉं के संबंध में अध्ययन करने से पहिले भक्तिकाल की विभिन्न पृष्ठभूमियो का अति संक्षेप में यहाँ पर उल्लेख करेंगे :—

१. **राजनीतिक परिस्थितियां** – भारत पर मुसलमानों के आक्रमण तो बहुत पहले से होते आ रहे थे, परन्तु इस युग में आते आते तो उनका प्रभुत्व संपूर्ण भारत पर जम गया। राजस्थान के छोटे-छोटे रजवाड़े अपने आप में स्वतन्त्र थे। उनमे अहं भावना का इतना अधिक प्राधान्य था कि वे छोटी-छोटी बातों पर ही युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाते थे। आपसी युद्धों द्वारा उनकी शक्ति दिनो दिन क्षीण होती जा रही थी।

काफी समय तक तो राजस्थान में मेढ़ता राजनैतिक षडयन्त्रों का केन्द्र बना रहा उधर चितौड़ तो प्रारम्भ मे ही मुगल सत्ता का विरोधी गढ़ रहा है। राणाओं ने कई बार मुगल सत्ता की नीवं हिला डालीं परन्तु सहयोग के अभाव में वे सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

ऐसे समय में राजस्थान के दो बड़े राजघरानों में विवाह संबंध स्थापित हुए। ये दोनों ही राजघराने अपनी वीरता एवं महानता के लिये प्रसिद्ध थे। युद्ध एवं संघर्ष में जो उज्जल रूप इन राजघरानों का दिखाई देता है, यह अन्यत्र नहीं मिलता। इसके साथ ही भक्ति एवं शांति की सुन्दर व्यवस्था भी उतने ही आदर्श एवं सुन्दर रूप में होती थी इन दो विरोधी रूपों को देखकर आश्चर्य होता है। युद्ध एवं संघर्ष की छाया में भी भक्ति पनप रही थी। समाज का जोवन सुव्यवस्थित रूप से चल रहा था।

मीरा ने इन दो परिवारों के बीच एक प्रेमपूर्ण सरिता को प्रवाहित किया। दोनों परिवार उस समय राजनैतिक दृष्टिकोण से बहुत अधिक महत्व पूर्ण थे। ऐसे अशान्त और राजनैतिक संघर्ष के समय में भी मीरॉं की भक्ति भावना सुरक्षित रूप से पनपती रही। मीरॉं राज बन्धुत्व की सीमाओं को छोड़कर समाज के मध्य में आने के लिए कटिबद्ध थीं, मीरॉं की यह क्रान्तिकारी भावना शीघ्र ही दोनों परिवारों के लिए एक समस्या बन गई। "एक ओर उस घराने की वहू मीरॉं—एक नारी, प्रेम

ग्रौर भक्ति की दीवानी, ग्रौर दूसरी ग्रोर विपरीत राजनैतिक वातावरण से क्षुब्ध, फेनिल सागर की उत्ताल तरंगों पर डगमगाती नैया की तरह, पार लगने में चिंतित चित्तौड़ का राजघराना ।[१]

२. **सामाजिक परिस्थितियाँ**—डा० रांगेय राघव लिखते हैं कि "भक्ति ग्रान्दोलन के प्रतिपक्षी इस्लाम ग्रौर हिन्दू उस समय नहीं थे, उस समय थी निम्न जातियाँ ग्रौर ब्राह्मण तथा उच्च जातियाँ। दक्षिण के ग्रडयार ग्रौर ग्रालावारों से प्रारम्भ हुग्रा भक्ति का यह प्रभाव पशुपातों में संबल पाता रहा, फिर भागवत सम्प्रदाय बनकर वैष्णवों में पल्लवित हुग्रा ग्रौर उसका शैव समानान्तर लिंगायत में प्रकट हुग्रा। पूर्व में सहजयान, भक्ति के रूप में बदल गया। समस्त भक्ति सम्प्रदाय उच्च वर्गो के ग्रधिकारों के विरुद्ध था। वास्तव में समाज में जातिय संघर्ष की प्रधानता थी। उच्च वर्ग-निम्न वर्ग को उनके ग्रधिकार देने के लिए प्रस्तुत नहीं था ग्रौर निम्न वर्ग ग्रपने ग्रधिकारो को लेने के लिए कटिबद्ध थे। संतों ने निम्न वर्ग को ग्रपनाया ग्रौर उन्ही की भाषा में साहित्य का सृजन किया ग्रतः संत-सम्प्रदाय सबसे ग्रधिक लोक प्रिय हो गया। कबीर ग्रादि समाज सुधारकों ने निम्न भ्राँति-पूर्ण धारणाग्रों ने विरोध में क्राँतिकारी कदम उठाए ग्रौर बहुत ग्रधिक सीमा तक वे उसमें सफली भूत भी हुए।"

समाज में धर्म के प्रति बहुत ग्रधिक ग्रास्था थी। भक्ति की भावना समाज के प्रत्येक क्षेत्र में ग्रपने प्रभुत्व को जमा चुकी थी। सन्तों ग्रौर साधुग्रों का समाज में सम्मान था। देवमन्दिर में प्रभु की उपासना ग्रौर कीर्तन होते रहते थे। धर्म की विभिन्न विचारधाराग्रों में भी ग्रापसी संघर्ष बहुत ग्रधिक मात्रा में था, परन्तु कवि एवं समाज सुधारक इस संघर्ष को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील थे। सगुण ग्रौर निर्गुण दोनों ही प्रकार की भक्ति का प्रचलन था ग्रौर दोनों में इतना समन्वय हो चुका था कि हर कवि की रचना में दोनों का प्रभाव किसी न किसी रूप में दिखाई देता है। दोनों ही विचारधाराएँ साथ ही साथ पनप रही थीं, एक दूसरे के सहयोगी रूप में। राजस्थान में भक्ति की दोनों ही चिन्तन धाराएँ समान रूप से प्रचलित थीं। समाज में धर्म के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास की भावना थी।

राजस्थान में नारी का जीवन बहुत ही ग्रधिक संघर्षों में उलझा हुग्रा था। मुसलमानों के प्रभाव के कारण पर्दा प्रथा का प्रचलन सीग्रा से भी ग्रधिक मात्रा में बढ़ गया था। जहाँ तक राजघरानों का प्रश्न है, वहाँ पर तो इस प्रथा पर बहुत

---

१. राजस्थानी भाषा ग्रौर साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी पृ० ३१५,

अधिक बल था। राजघरानों की देखा-देखी चारण एवं समाज के अन्य वर्गों में भी इस प्रथा का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा था। नारी पुरुष की सह-धर्मिनी ही समझी जाती थी, परन्तु उसकी पृष्टभूमि में विलासिता की गन्ध हमें स्पष्ट दिखाई देती है। एक ही साथ अनेक विवाह इसी भावना के द्योतक हैं। नारी का पति के साथ सती हो जाना ही गौरव की वस्तु समझी जाती थी मीरा भी कहती हैं कि—

वर होणों अपणो भलो है, कोढ़ी कुष्टी कोई।
जाँके संग सोपारतां है, भला कहै सब लोइ॥

परन्तु साथ ही पति के प्रति अनन्य प्रेम का यह धर्म तो नहीं है कि पति की मृत्यु के साथ ही उसे भी भोग की वस्तु समझ कर जलने के लिए मजबूर कर दिया जाय। मीराँ ने इस परम्परा का विरोध किया। मीराँ क्रान्तिकारी भावना के साथ समाज में आईं और कहा सती न होस्यां गोविन्द गास्याँ।

इस समय पुरुषों का पुरुषत्व ही उनकी सबसे बड़ी वस्तु थी। युद्ध एवं संघर्ष ही उनका जीवन था। पुरुषों में उत्साह, स्फूर्ति एवं उल्लास की लहर फैली हुई थी। पुरुष अपने वीरत्व के साथ ही साथ विलास की ओर भी अग्रसर हो रहे थे।

साधारण समाज मे नृत्य और संगीत के प्रति रुचि थी। राजघरानों में नृत्य एवं संगीत कला अपने रूप को संवारती हुई विकास की ओर बढ़ रही थी। राजघरानों के अनुकरण पर देव मंदिरो मे भी प्रभु को प्रसन्न करने के लिए नृत्य और संगीत की व्यवस्था की जाती थी।

३. **धार्मिक परिस्थितियाँ**—भारत के कोने कोने में भक्ति भावना की लहरें हिलोरे मार रही थी। डा० श्री कृष्णलाल के शब्दों मे "यह राजपूतों की वीरता का युग था—महाराणा साँगा और प्रताप, वीर श्रेष्ठ जयमल और पुताँ राव जोधाजी और मालदेव जैसे मालधनी वीरों की कीर्ति से सारा राजपूताना गुंज रहा था—यह कबीर, दादू, नानक, रैदास तथा नरसी मेहता जैसे ईश्वर परायण भक्तों का युग था—यह एक अवतारी युग था जब गोसांई तुलसीदास आदि कवि महर्षि वाल्मीक के, गौरांग महा प्रभु श्री चैतन्य देव भगवान कृष्ण के, महात्मा हरिदास ललिता सखी के और गोसाईं हित हरिवंश भगवान मुरलीधर की मुरली के अवतार समझे जाते थे। और मीराँ द्वापर युग की ब्रज गोपी का अवतार प्रसिद्ध थीं। यह युग हरिदास, तानसेन, बेजूबावरे तथा सूरदास जैसे गायकों का युग था और मीराँबाई एक अलौकिक गायिका थीं, यह सूरदास, तुलसीदास, विद्यापति तथा कबीर जैसा महा कवियों का युग था और मीराँ एक जन्म जात कवि थीं।"[१]

---

१. मीराँबाई—डा० श्रीकृष्णलाल पृ० ३।

इस युग में भक्ति भावना की प्रमुख धारायें प्रवाहित हो रही थीं जिन्हें हम सगुण भक्ति धारा और निर्गुण भक्ति धारा कह सकते हैं। इन दो शाखाओं की भी उपशाखाएँ थी। सगुण भक्ति धारा की प्रमुख दो उपशाखाएँ है जिसमे हम राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा को ले सकते हैं। निर्गुण भक्ति धारा में ज्ञानाश्रुति शाखा और प्रेम मार्गी शाखा आती हैं। भक्ति की यह धारा उत्तर और दक्षिण में समान रूप से प्रवाहित हो रही थी।

राजस्थान में भक्ति भावना के दोनों रूप बहुत अधिक प्रचलित थे। राम और कृष्ण की उपासना के साथ ही निर्गुण, निरंजन ब्रह्म की भी उपासना लोक प्रिय होती जा रही थी। गोरखनाथ और उसके सम्प्रदाय का प्रभाव राजस्थान की भक्ति-भावना पर बहुत अधिक मात्रा में पडा है। निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्ति को राज्याश्रय प्राप्त था। जोधपुर के राजघरानों ने सगुण भक्ति के साथ ही साथ नाथ-सम्प्रदाय को भी अधिक महत्त्व दिया। इस युग में ही सगुण और निर्गुण के बीच की सीमाऐं कम होती जा रही थीं। ईश्वर के दोनों स्वरूपों का समन्वय कर साधारण जनता मध्यम मार्ग को अपना रही थी।

मीराँ के साहित्य का अध्ययन करने पर हमें युग की प्रचलित भक्ति परम्परा का प्रभाव उस पर स्पष्ट दिखाई देता है। मीराँ के प्रियतम श्री कृष्ण सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं और निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। दोनों प्रकार की भक्ति भावना का समन्वय मीराँ की रचनाओं में मिलता है। मीराँ किसी भी मार्ग और विधि द्वारा अपने प्रियतम से मिलना चाहती थीं। मीराँ ने भक्ति की प्रचलित दोनों धाराओं को इसी उद्देश्य से अपनाया था। अतः मीराँ को किसी एक विशेष शाखा की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है "जो लोग मीराँ को सगुण और निर्गुण किसी एक कटघरे में खड़े करते हैं, वे स्पष्ट ही नए तत्कालीन राजस्थान के धार्मिक वातावरण और परिस्थितियों को समझने से इंकार करते है तथा मीराँ के पदों में अभिव्यक्ति हुई उक्त तीनों प्रकार की भावनाओं को कुचलकर उसके व्यक्तित्व को पंगु बनाना चाहते हैं।[1]

४. **दार्शनिक पृष्ठभूमि**—भारतीय दार्शनिक चिन्तन का प्रमुख विषय आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की व्याख्या करना है। आध्यात्मिक दर्शन जीव, ब्रह्म और जगत के निर्माण और विकास के कार्यों की चर्चा करता है। जीव, ब्रह्म, माया और जगत के सम्बन्ध में विविध विचार धाराओं का प्रतिपादन हुआ है। आत्मा और

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी पृ० २१५

परमात्मा के सम्बन्धों को लेकर भी विभिन्न वाद हमारे सामने आये हैं। द्वैत अद्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि विविध वाद दार्शनिक चिन्त के आधार पर बन गये। सभी ने आत्मा और परमात्मा के मिलन के बीच एक सीमा रेखा खिंची गयी, जिसे माया कहा गया। माया का पर्दा हटते ही आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है ऐसा मान लिया गया है। जीव और जगत की नश्वरता के बारे में भी अधिकांश विद्वान एक राय हैं। इस प्रकार इस युग में साहित्य और दर्शन का बहुत गहरा सम्बन्ध रहा।

५. **निष्कर्ष**—मीराँ का युग भक्ति का युग था। भक्ति-साधना में मीराँ का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने राजघराने की नारी होते हुए भी क्रांति का अमर संदेश दिया। मीराँ के हृदय में ढले हुए गीतों में हमें आत्मा के स्वर दिखाई देते हैं। इस युग में समाज दो विरोधी विचार धाराओं से संघर्षशील था। संघर्षशील होते हुए भी यह युग अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य, राजनीति. कला, समाजशास्त्र और इतिहास के लिये महत्त्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत रहा है।

———

*

२

मीराँ के जीवन सम्बन्धी कुछ तथ्य

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीराँ गिरधर भजि।
सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुग ही दिखायो॥[1] भक्तमाल.

लोक की सीमाएँ महान आत्माओं को अपने संकीर्ण क्षेत्र में समेट कर नहीं रख सकती। ये महान आत्माएँ अपने व्यक्तित्व के द्वारा ऐसा परिष्कृत रूप हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं कि हम अनायास ही उनकी मान्यताओं को मान बैठते हैं। जीवन के प्रारम्भ से ही व्यक्ति की जिज्ञासु प्रवृत्ति ने उसे सत्य को परखने के लिये उतसहित किया, जिसने इस विश्व का निर्माण किया है और संचालन करता जा रहा है।

भक्ति युग की चिन्तनधारा के विकास में अनेक साहित्यकारों ने योग दिया है। किसी ने कृष्ण के बाल रूप, यौवन और विरह के गीत गाये तो किसी ने राम जैसे आदर्श चरित्रों को हमारे सामने प्रस्तुत किया। कबीर की फक्कड़ वाणी ने हृदय की संकीर्ण भावनाओं को हटाकर मानव प्रेम का संदेश दिया तो दूसरी ओर जायसी ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम के महानता की अभिव्यक्ति की। ईश्वर की आराधना के ये विभिन्न मार्ग हमारे सामने आये जो अन्त में जाकर एक ही मंजिल पर पहुँच जाते हैं।

इसी युग में राजस्थान में वीर रस और वीरत्व की भावना का प्राधान्य था। जीवन और मृत्यु के साथ संघर्ष करते हुए वीरों की छत्र छाया में भक्ति धारा सुन्दर एवं सुरक्षित रूप से बह रही थी। इसी समय में राजस्थान के प्रसिद्ध राजघरानों के अंतःपुर से नारी कंठ ने ऐसे आन्तरिक संगीत स्वर लहरी को छेड़ा जिसने

---

१. भक्तकाल सटीक—नाभादास, पृष्ट ६६४,

वीरत्व और मानवत्व को मुग्ध कर लिया। जिस प्रकार फूल के सौन्दर्य एवं महक से सारे वातावरण का सौन्दर्य निखर उठता है, ठीक उसी प्रकार मीरा के सौन्दर्य और व्यक्तित्व ने सारे वातावरण को प्रभावित कर दिया। प्रेम की तीव्रता, अनुभूति की गहराई, तन्मयता और उपासना ने मीरां को प्रेम की उच्च श्रेणी का अधिकारी बना दिया। साधारण ज्ञान में वह गोपी का अवतार मानी जाने लगीं।

भारतीय दर्शन प्रारंभ से ही अहं-भाव और व्यक्तिगत प्रचार का विरोधी रहा है। उन साधकों ने अपने चिन्तन, मनन और अध्ययन के द्वारा सत्य को जिस रूप में देखा उसे अपने सिद्धान्तों में ढाल कर हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया। जिस प्रकार आकाश में चमक कर बिजली बार बार भूले हुए राही को उत्साहित करती रहती है, जिससे उसका मार्ग प्रदर्शन होता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य साधक भी जन जीवन में नवीन प्रेरणा जाग्रत करने का कार्य करते हैं। उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह त्याग एवं जन कल्याण की भावना को लेकर कहीं पर भी व्यक्तिगत प्रचार की भावना नहीं दृष्टिगोचर होती है। समय का झीना-सा आवरण आया और धीरे-धीरे गहरा होता गया। समाज उनके व्यक्तित्व और जीवन की अपेक्षा रचनाओं की ओर अधिक ध्यान देने लगा। आज जब हम उनके बारे में जानने के लिये प्रयत्न शील होते हैं तो हमारे लिये एक समस्या खड़ी हो जाती है। इतिहास, जन-श्रुति' साहित्य और कल्पना का मिश्रण कर हम उस सत्य की गहराइयों को जानने का प्रयत्न करते हैं। वे आत्माएँ अपने अन्तर का संदेश देकर जन-मन के बीच में इस प्रकार मिल जाती हैं कि उनका पता लगाने के लिये हमारे पास बहुत ही सीमित साधन रह जाते हैं। इन साधनों को हम दो प्रमुख भागों में बाँट सकते हैं—

१. अंतःसाक्ष्य—

२. बहिसाक्ष्य—

इन दोनों प्रधान तथ्यों के आधार पर हम साहित्यकार के जीवन संबंधी सत्यों को तर्क, हृदय और कल्पना के आधार पर समालोचना की कसौटी पर परखने का प्रयत्न करेंगे और देखेंगे कि कौन किस सीमा तक सत्य है या सत्य के करीब—

मीरां के साहित्य में जीवन की झाँकी—भारतीय साहित्यकारों के जीवन की सत्यता का पता लगाने की समस्या प्रारम्भ से ही रही है, परन्तु जहाँ तक मीरां का संबंध है मीरां का जीवन राजस्थान के सुप्रसिद्ध राजघरानों में अपनी सौरभ फैलाता रहा है। यहीं पर मीरां को अधिक स्पष्ट और करीब से देखा जा सकता है। मीरां के जीवन के प्रति जो कुछ भी संदिग्धता है वह यह कि साहित्य, जनश्रुति और लोक

चिन्तन ने एक अजीब सा मिश्रण बना डाला है। परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि "मीराँ की विचित्र जीवनी के संबंध में विविध कल्पनाएँ की जाती रही हैं।"[1]

साहित्य मे व्यक्ति का व्यक्तित्व छाया रहता है। व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि पर ही साहित्य का निर्माण होता है। मीराँ के नाम पर कुछ ग्रन्थ प्राप्त होते हैं परन्तु उनकी प्रमाणिकता संदिग्ध है। केवल मात्र मीरा के पदों के आधार पर हम जीवन को देखने का प्रयत्न करेंगे—

मीराँ का लालन-पालन अधिकांशत: मेड़ते में ही हुआ था। यहीं पर किसी साधु के पास कृष्ण की मूर्ति देखकर उनके हृदय में आकर्षण पैदा हुआ और धीरे-धीरे वही आकर्षण प्रेम के रूप में बदल गया। बचपन के प्रेम की दुहाई देती हुई मीराँ कई पदों में बालापन की प्रीति कहकर उसके सत्यता की अभिव्यक्ति करती है। बाल-सुलभ क्रीडाओं के बीच ही बीच में कृष्ण को अपना पति स्वीकार कर लेती है। कृष्ण के साथ वे अपने जन्म जन्म के संबंधों की ओर भी संकेत करती हैं। प्रेम की तीव्रता और कल्पना की विशेषताओं के कारण कृष्ण की मूर्ति देखकर उसकी निष्ठुरता पर बाल सुलभ ढंग से कहती हैं।

तनिक हरि चितवां म्हारी ओर।
हम चितवां थें चितरो णा हरि हिवड़ो बड़ो कठोर॥

धीरे-धीरे अन्तर्मन में कृष्ण के रूप और यौवन की विभिन्न झांकियां उभरने लगीं और वही उसके साथ क्रीड़ा करने लगीं। मीरा ने उसी प्रेम के गीत को जीवन भर गाया। अपने पीहर वालों की चर्चा मीरा के पदों में बहुत कम मिलती है। मीरां के कुछ ऐसे पद मिले हैं जिसमें मां शब्द को संबोधित करके कहा गया है—

१. हे माँ। बड़ी बड़ी अखियन वारो सांवरो मों तन हेरत हसिके—
२. मत बरजै माइड़ी साधां दरसण जाती—
३. मांई म्हानें सुपणे में परण गया जगदीश—

परन्तु वह माँ, माइड़ी या मांई कौन थी और यह कब तक जीवित रही इस संबंध में कोई विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

मीराँ ने अपने दादा राव दूदा के बारे में कुछ भी नहीं लिखा यह बड़े आश्चर्य की वस्तु है। मीराँ का विवाह मेवाड़ के राणा भोजराज के साथ हुआ था। मीराँ विवाह का विरोध करती रही परन्तु समाज की व्यवस्था ने उन्हें विवाह के बन्धन में

---

१. मीराँ एक अध्ययन की (भूमिका)—पदमावती शबनम,

बांध ही दिया। शारीरिक विवाह की उपेक्षा करती हुई मीराँ ने मानसिक प्रणय की प्रधानता दी। परिणाम स्वरूप मीराँ का वैवाहिक जीवन संकटमय बन गया। मीराँ ने इसकी चर्चा कई पदों में की है :—

१. बतलावां बोली नहीं राणा जी गया रिसाय।

२. राणा मो पर कोप्यो रती न राख्यो मोद।

ले जाती बैकुंठ में यह तो समझयो नहीं सिसोद।

स्पष्ट है कि राणा भोजराज मीराँ की इस उपेक्षा से दुखी एवं विरोधी हो गये थे। राणा के जीवन काल में ही मीराँ ने साधुओं के साथ हरिकीर्त्तन करना प्रारंभ कर दिया था। राजघरानों में इस प्रकार का कदम उठाया जाना समाज में आलोचना का विषय बना। राणा ने मीरां को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु उसका मीराँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राणा ने क्रोधित होकर मीराँ को यातनाएं भी देनी प्रारंभ की, जिसका उल्लेख उनके विविध पदों में मिलता है। राणा का संबोधन भोज-राज के लिये ही किया गया है। भोजराज की मृत्यु के पश्चात् तो मीराँ को और अधिक आजादी मिल गई। मीराँ को जीवन की नश्वरता का भान हो उठा और गिर-धर के प्रति उनका प्रेम और भी दृढ़ होता गया। मीराँ ने अपने प्रियतम की उपासना समाज के मध्य में प्रारंभ की। राजकुल की मर्यादा और युग की परिस्थितियाँ इस प्रकार के कदम से पूर्ण विरोधी थीं। मीराँ का विरोध राज-परिवार में तेजी से बढ़ा और उन्हें विविध यातनाएं भी दी जाने लगीं, जिसका उल्लेख पदों में सांप पिटारा, जहर देना आदि के रूप में किया गया है। मीराँ की आजादी के विरोध में कई जगह से उपालम्भ भी आये थे :—

लाजे पीहर सासरो, माइतणो मौसाल।
सब ही लाजे मेडतिया जी, थांसू बुरा कहे संसार॥

मीराँ के विरोध एवं यातनाओं की घटनाएं कुछ सीमा तक सत्य के करीब ही दृष्टिगोचर होती है। मीराँ की यातनाएं जनश्रुतियों की गोद में पलकर अनेक रूप धारण करती रहीं। एक घटना को लेकर भक्त लोगों ने उसे लोक मानस पटल पर बहुरंगी चित्रों की तरह चित्रित कर दिया।

मीराँ के पदों में गुरू के संबंध में कुछ उल्लेख अवश्य मिलता है :—

१. मीराँ ने गोविन्द मिलाया, गुरू मिलिया रेदास—

२. गुरू मिलिया रेदास जी, दीन्हीं ग्यान की गुटकी—

मीराँ के ये रैदास जी कौन थे इस संबंध में कुछ भी अंतिम रूप से नही कहा जा सकता। गुरू ने मीराँ को जीवन के विविध सत्यों से अवगत कराया। वह राज-कुल के संकीर्ण घेरे को छोड़ने के लिये तैयार हो गई। राणा से उसने कहा :—

नहिं भावे थांरो देसलड़ो रंगरूड़ो ।
थांरा देसां में राणा साथ नहीं छै लोग बसे सब कुडो ।

मीराँ ने मेवाड़ का त्याग कर दिया । मेड़ता पहुँचकर मीराँ कुछ समय के लिये तो गिरधर का कीर्तन करती रही, फिर वृन्दावन की प्रशंसा में कई पद लिखे :—

आली म्हानें लागों वृन्दावण नीकों ।
घर घर तुलसी ठाकर पूजां दरसण गोविन्द जी का ।

वृन्दावन की कुंज गलियों में आनन्द से प्रभु का स्मरण करती हुई मीराँ कृष्ण की राजधानी द्वारिका की ओर चल पड़ी । वहीं पर कृष्ण की मूर्ति के सामने नृत्य, गीत और संगीत द्वारा उपासना का क्रम चलता रहा । अंत में कृष्ण की उपासना में रत ही मीराँ का महाप्रयाण हो गया ।

बहि साक्ष्य :—

प्रत्येक साहित्यकार का जीवन समाज के मध्य से ही प्रारंभ होता है । समाज और व्यक्ति का संबंध लोक-जीवन और लोक-मानस पर अपनी स्मृतियां अटल कर देता है । उनकी हल्की सी रेखाओं को देखने के लिये उस काल की प्राप्त सामग्री में साहित्यकारों की रचनाएं, एतिहासिक प्रमाण और जनश्रुतियों के विश्लेषण द्वारा राज्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । युग की विचारधारा साहित्य के माध्यम से ही अपने को व्यक्त करती है । मीराँ के संबंध मे प्राप्त सामग्री में से महत्व पूर्ण प्रमाणों का हम यहां पर उल्लेख करेंगे :—

१. **सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलि जुगहिं दिखायो ।**
निर अंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायो ।
दुष्टिन दोष विचारी, मृत्यु को उदम कियो ।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयो ।
भक्ति निसान बजाय के, काहू ते नाहिं न लाजी ।
लोक लाज कुल श्रृंखला, तजि मीराँ गिरधर भजी ।

भक्तमाल (नाभादास)

मीराँबाई बिनु को भक्तिन पिता जानि उर लावे :—

—व्यास जी ।

३. **लाज छांडि गिरधर भजी, करी न कुछ कुल आनि ।**
सोई मीरां जग विदित, प्रगट भक्तिन की खान ।

—ध्रुवदास ।

४. चौरासी वैष्णवों की वार्ता में दी गई वार्ताओं से केवल मात्र यह स्पष्ट होता है कि मीराँ कभी भी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं हुई ।

५. दो सौ वैष्णवों की वार्ता में जयमल का भी एक बेन का उल्लेख मिलता है जो परदे में रहती थी। उसका नाम नहीं दिया गया है।

६. Encylopedia britanica में लिखा है कि :—

(Mira) Born about A. D. 1504,

A sub-sect is that founded in the 16th century by Mirabai, a famous princess and poetess of Rajputana, her special subject of worship is krishna is Ranchowra :—

७. शिवसिंह सरोज और कविवर श्यामलदास मीरॉं को राव दूदा की पोती और रत्नसिंह की पुत्री मानते हैं।

८. Col. tod अपनी पुस्तक Annals and antiquities of Rajasthan में लिखते हैं कि "Kumbha married a daughter of Rathor of Merta the fitest of the clams of Marwar Mirabai was the most celebrated princess of her time for beauty and romantic poetery.

९, मीरां माधुरी में ब्रजरत्नदास बी० ए० एल० एल० बी० लिखते हैं कि मीरॉं का विवाह राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ।

१०. वीर-विनोद में लिखा है कि महाराणा सांगा के पाटवी यानी सबसे बड़े पुत्र भोजराज थे, जिनको मेड़ता के मेड़तियों राजा विरमदेव की बेटी और जयमल की बेन व्याही गई थी।

११. मुंशी देवीप्रसाद लिखते हैं कि मीरॉंबाई का जन्म मेड़ते में हुआ था और उसका विवाह १५७३ वि० सं० में राणा सांगा के बड़े बेटे भोजराज के साथ कर दिया गया।

मीरॉं के संबंध में प्राप्त सामग्री का अध्ययन और विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि मीरॉं के संबंध में विद्वानों में मत-भेद है। कुछ मीरॉं और कुंभा के गुणों का साम्य देखते हुए उसका संबंध कुंभा से जोड़ते हैं और अन्य मीरॉं को भोजराज की पत्नि मानते हैं। हम आगे मीरॉं के जीवन संबंधी तथ्यों की हल्की-सी रूप रेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

डा० एस० के० लाल लिखते हैं कि "यह सच है कि हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि मीरॉं किस संवत् में अवतरित हुई, अथवा कब और कैसे यह नश्वर देह

नोट :—जनश्रुतियों आदि का उल्लेख विस्तार भय के कारण नहीं किया गया है।

छोड़ी। परन्तु यही तो सब कुछ जानना नहीं है। जो जानना आवश्यक है वह तो यह है कि वे किस युग में, किस वंश में, किस वातावरण में अवतरित हुई, उनकी शिक्षा और दीक्षा किस प्रकार हुई, उनके जीवन मे कितने संघर्ष किस रूप में उपस्थित हुए हैं और उन संघर्षों को उन्होंने किस रूप में कितनी सफलता के साथ झेला। जीवन का निर्माण और विकास जिन परिस्थितियों में होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व भी उन्हीं के आधार पर अपने साथ ढलता रहता है। साहित्यकार के व्यक्तिगत जीवन के संघर्षों और उन संघर्षों का युग के साथ संबंध किस रूप में रहा इसकी झलक हमें उनके साहित्य मे मिल जाती है।[१] मीराँ के संबंध में प्राप्त सामग्री के आधार पर हम मीराँ की जीवनी इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे।

१. **मीरां और उनका युग** :—भारतीय जीवन भक्ति भावना से ओत-प्रोत था। ईश्वर के प्रति प्रेम और उपासना के विभिन्न मार्ग अपनाये जा रहे थे। राजस्थान में भक्ति के साथ ही साथ वीरत्व की भावना भी प्रवल वेग से वह रही थी। मीराँ के जीवन में भक्ति और वीरत्व दोनों का उज्जवल पक्ष दिखाई देता है।

२. **मीराँ का जन्म और बाल्यावस्था** :—राजस्थान के राजघरानों में राठोड़ वंश बहुत ही प्रसिद्ध है। उसी राठोड़ वश के वीर एवं परम भक्त राव दूदा की पोती और रत्नसिंह की पुत्री थीं मीरां १—मीरा का जन्म वि० सं० १५५६ में कुंडकी नामक गांव में हुआ था। रत्नसिंह युद्ध प्रिय एवं व्यस्त योद्धा होने के नाते अधिकतर बाहर ही घूमा करते थे। मीराँ की माता की मृत्यु बचपन में ही हो गई थी। अतः मीराँ का पालन-पोषण उसके दादा राव दूदा की निरीक्षणता मे हुआ। मीराँ के साथ ही साथ उसका चचेरा भाई जयमल भी शिक्षा प्राप्त कर रहा था। मीराँ के दादा राव दूदा परम ईश्वर भक्त और वीर थे। भक्ति भावना की तन्मयता और आस्था, वीरत्व की महानता और गहराई उन्होने अपने अपने दादा से सीखी। दूदा ने बचपन से ही मीराँ को भक्ति की ओर अग्रसर कर दिया।

बचपन में खेलते हुए मीराँ को किसी साधु के पास एक सुन्दर मूर्ति दिखाई दी। मीराँ ने उस मूर्ति को हठ द्वारा ले लिया।[२] अब खेल का उपयुक्त साधन होने के

---

१. डा० श्रीकृष्णलाल : मीरांबाई पृ० ६।

२. अ—जनश्रुति के अनुसार यह संत रैदास जी थे परन्तु किसी विशेष प्रमाण के अभाव में हम इसे नहीं मान सकते।

ब—मूर्ति देने के बारे में भी तीन मतभेद हैं—१ साधु ने बिना मागे ही मूर्ति दे दी २—साधु को स्वयं भगवान ने स्वप्न में आकर कहा। ३—मीराँ ने हठ द्वारा ले ली—

स—मूर्ति देने वाले साधु थे और कुछ विद्वानों का मत है कि वे संत थे।

कारण अब मीराँ रात दिन मूर्ति की सेवा करने लगी। खेल ही खेल की उम्र में मीराँ ने कृष्ण को अपना पति मान लिया। मूर्ति का आकर्षण प्रेम के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रेम और कल्पना की तीव्रता के कारण कृष्ण साकार रूप में आकार मीराँ के साथ खेलने लगे। मीराँ ने बालपणे की प्रीत कहकर अपने बचपन के प्रेम की ओर कई पदों में सकेत किया है।

३. **मीरा के पीहर वाले**—मीराँ के पदों की छानबीन करने के पश्चात् हमें बड़ा आश्चर्य होता है, जब हम यह देखते हैं कि मीराँ ने अपने पीहर वालों का कहीं पर उल्लेख नहीं किया। राव दूदा से जीवन के सत्यों को सीखा, पर उनका भी कहीं पर उल्लेख नहीं है। जहाँ तक माँ का प्रश्न है, कुछ पद ऐसे प्राप्त होते हैं जिसमें माँ ! संबोधन को प्रयुक्त किया गया है। परन्तु यह मां कौन थीं ? कब तक जीवित रही ? यह अभी तक संदिग्ध है। विद्यानन्द शर्मा लिखते हैं कि "मीराँ की माता का नाम अजब कंवर बाई था और वे टोंकनी को राजपूतनी थी"।[1] परन्तु उन्होंने इस सत्य के समर्थन में कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नही किये हैं! मां। संबोधन की कोई नारी विशेष थी अवश्य जिससे मीरा को वैसा ही प्रेम था कि जैसा कि मां के साथ होता है।

४. **मीरा का विवाह और वैध्वय**:—राजस्थान में कन्या का विवाह यौवन प्राप्ति के साथ ही साथ कर दिया जाता है। प्राचीन कुछ धर्म ग्रन्थों में छोटी उम्र मे शादी करना ही धर्म युक्त माना गया है। मीराँ का विवाह भी वि० सं० १५७३ में राणासाँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ कर दिया गया। राजघरानों की प्रथा के अनुसार सुसराल आने पर भी उसे पीहर के कुल के नाम से ही पुकारा जाता है। सभी इन्हें मेडतनी कहकर संबोधित करते थे। मीराँ कृष्ण की उपासना में ही रत रहती थीं। राँणा के प्रति मीराँ की इस उपेक्षा ने विरोध को जन्म दिया। राणा ने मीरा को समझाने का प्रयत्न किया। मीराँ स्वयं कहती हैं "बलताया बोली नहीं राणा जी गया रिसाय। मीराँ अब अवलौकिक भाव-भूमि पर पहुँच गई थीं, जहाँ से लौट आना संभव नहीं था। राणा के क्रोध की चर्चा भी उन्होंने कई पदों मे की है। ऐसे ही समय में मीराँ के जीवन में भयानक झंझावत उठने लगे। वि० सं० १५८० के करीब भोजराज का देहान्त हो गया। मीराँ के जीवन और व्यक्तित्व पर विषाद की गहरी रेखाएं फैलने लगीं। मीराँ ने राजघरानों की चाहर दिवारी को छोड़ दिया। उनके हृदय में ऐहिक जीवन के प्रति विराग तथा अलौकिक के प्रति राग था।

---

१. मीरा—स्मृति ग्रंथ—परिष्कृति ५.

५. **मीरा के मार्ग की बाधाएँ और यातनाएँ :**—मीराँ के सामाजिक बन्धन तो एक सीमा तक अपने आप टूटते जा रहे थे। राजकुल की संकीर्ण मर्यादाओं में रहना उसके लिये संभव नहीं था। उन्होंने समाज के खुले प्रांगण में प्रवेश किया। मीरा की यह क्रान्तिकारी विचारधारा राजघराने के बंधुओं को बहुत अप्रिय लगी। मीराँ के प्रमुख विरोधियों मे राणा भोजराज, राजा विक्रमाजीत सिंह मीराँ की ननद उदाबाई और दीवान महाजन वीजावर्गी को ले सकते हैं। कुछ कष्ट देने के पश्चात् भी वे उसे समझाने में सफल नहीं हो सके। यातनाओं का विभिन्न रूपों से प्रस्तुत किया गया है। लोक जीवन में घुलकर ये यातनाएँ हमारे सामने अनेक रूप में आई पर उनमें सत्य का अंश अवश्य है। मीरा को एसी अवस्था में मारने का उपक्रम भी किया गया हो तो कोई आश्चर्य की वस्तु नहीं।

६. **मीराँ का मेवाड़ और मेड़तो त्यागना :**—मीराँ को दिये जाने वाली यातनाओं की चर्चा फैलती हुई मेडते भी जा पहुँची। मेडते से उनके लिये बुलावा आया।[1] कुछ समय तक तो मीराँ मेडते रही तदन्तर उन्होंने तीर्थ यात्राएँ प्रारम्भ कर दीं।[2] यह यात्रा सर्व प्रथम पुष्कर से प्रारम्भ हुई, फिर वृन्दावन होते हुए मीराँ द्वारिका पहुँची।

७. **मीराँ की शिक्षा और गुरू :**—मीराँ की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्रारम्भ हुई। राव दूदा ने ही उन्हें अध्ययन की ओर प्रेरित किया। नृत्य और संगीत की शिक्षा भी उन्होंने घर पर ही पाई थी। भाषा के रूप में मीराँ की मातृ भाषा मारवाड़ी थी, विवाह के उपरान्त उन्होने मेवाड़ी भी सीख ली। जीवन की यात्राओं में उन्होने ब्रजभाषा और गुजराती का भी ज्ञान कर लिया था।

१, मीराँ मेड़ते स्वयं अपनी इच्छा से चली गई ऐसा कुछ विद्वानों का मत है परन्तु वास्तव में मेड़ते से बुलावा ही आया था ऐसा अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है—

२. मीराँ की तीर्थ यात्राए' प्रारम्भ करने के सम्बन्ध में भी विद्वानों में दो राय हैं—

(अ) मीराँ ने राजनैतिक परिस्थितियों को प्रतिकूल देखकर तीर्थ यात्राएँ प्रारम्भ कर दीं।

(ब) परन्तु अधिक तर्क संगत तो यह प्रतीत होता है कि मीराँ ने स्वेच्छा से ही तीर्थ यात्राएँ प्रारम्भ कीं।

मीराँ के गुरू के सम्बन्ध में अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया गया है। मीराँ से गुरू का सम्बन्ध इन लोगों से जोड़ा जाता है—

१. मीराँ के गुरू रैदास जी थे। इनकी चर्चा मीराँ के पदों में कई जगह आई है परन्तु ये रैदास जी कौन थे इनके सम्बन्ध में अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नही दिया गया है।

२. मीराँ जीव गोस्वामी की शिष्य थी। परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि मीराँ जीव गोस्वामी की शिष्य नहीं थीं—

३. मीराँ के गुरू कोई अज्ञात संत थे—

४. मीराँ रूप गोस्वामी की शिष्या थी—इस सिद्धान्त का भी खंडन हो चुका है—

५. मीराँ ने तुलसी से प्रेरणा ली थी। परन्तु यह भी निराधार है—

६. कुछ लोग मीराँ के राजपुरोहित को उनका गुरू मानते हैं, पर इस सम्बन्ध में भी कोई ठोस प्रमाण तो नहीं दिये गये हैं—

अतः गुरू का प्रश्न अभी तक बहुत ही अधिक विवाद ग्रस्त विषय है और शोध किये बिना किसी एक निश्चय पर पहुँचा नहीं जा सकता। जहाँ तक मीराँ के प्रारम्भिक शिक्षा का प्रश्न है मीराँ ने राव दूदा से ही शिक्षा ग्रहण की थी। भविष्य में किसी संत ने उन्हें प्रेरणा अवश्य दी थी परन्तु वह कौन था इस सम्बन्ध में हम अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कह सकते।

८. **मीराँ का महा प्रयाण** :—द्वारिका पहुँचकर मीरां कृष्ण की उपासना में ही व्यस्त रहने लगीं। वहीं कृष्ण की मूर्ति के सामने कीर्तन करते हुए मीराँ का महा प्रयाण हो गया है। यह वि० सं० १६३० के समय की घटना है।

मीराँ का सम्पूर्ण जीवन वेदना से ओत-प्रोत था। मीराँ का व्यक्तित्व एक दृढ़ व्यक्तित्व था जिसमें आत्म विश्वास स्पष्ट दिखाई देता है। मीराँ प्रेम की वह गायिका और कवीयत्रि थीं जिसके स्वर आज भी लोक-हृदय में गुंजते रहते हैं।

---

१. ऐसी जनश्रुति है कि मीराँ कृष्ण की मूर्ति में समा गई, और भक्तों को अब भी कृष्ण की मूर्ति में मीराँ के चीर की झलक दिखाई देती है। मीराँ को तो समस्त विश्व ही कृष्णमय दिखाई दे रहा था। द्वारिका में ही मीराँ की आत्मा ने नश्वर देह छोड़कर अनन्त सत्ता में अपने को लीन कर लिया।

—.——

३

मीराँ का व्यक्तित्व

Poetry is the spontoneous overflow of powerful feelings recollected in the movments of tranquality—wordsworth

मानव हृदय की वे भावधाराए' जो शांति के क्षणों में उद्भावित होती हैं, अपने को कविता के रूप में प्रगट कर देती हैं। कवि अपने काव्य जगत का ब्रह्मा होता है। कवि के जन्म-जात गुण अनुकूल अवसर पाकर पल्लवित होते रहते हैं। कवित्व के रूप में हृदय के उमड़ते हुए उद्गार अपने आपको प्रगट करते रहते हैं। कवि के चिन्तन पर उसके युग एवं वातावरण का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है। युग के प्रभाव के साथ ही साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व की झलक भी उसमें देखी जा सकती है। कवि किस युग का, वातावरण और बौद्धिक स्तर पर विकास प्राप्त कर रहा है उसका प्रभाव कवि के चिन्तनधारा पर पड़ता है जो आगे चलकर जीवन के विविध दृष्टि कोणों में बदल जाता है।

मनोविज्ञान के अध्ययन के साथ ही साथ साहित्य में व्यक्तित्व का अध्ययन और विश्लेषण भी प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक व्यक्ति के चिन्तनस्तर एवं दृष्टि कोण में अन्तर अवश्य होता है। उसी अन्तर के कारणों को व्यक्ति के साहित्य निर्माण की पृष्ठभूमि के अध्ययन द्वारा देखा जा सकता है। व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए नारमन लिखते है कि "व्यक्ति की बाह्य रचना, व्यवहार की चित्त-वृत्तियां, रुचियां धारणाओं, शक्तियों, योग्यताओं और कुशलताओं का सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन व्यक्तित्व की परिभाषा हो सकती है"।[१] व्यक्तित्व के अभाव में साहित्य का अध्ययन एक पक्षीय रह जाता है, जैसा ए० सी० वेनंसन लिखते हैं कि—

---

१. psychology : Norman. L. mumn

"one thing which gives value ot any piece of art, whether it be book, or picture, or music, is the subtle and evaise thing which is called personality, no amount of lalour of zest even of accomplisment can make it for the absence of this quality."[१]

व्यक्ति का व्यक्तित्व युग के नग्न सत्यों को अपने साधना की गरिमा में तपाकर उज्वल रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करता है। साहित्य के अध्ययन के लिये जिस प्रकार उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन अनिवार्य है ठीक उसी प्रकार व्यक्तित्व का भी अध्ययन अनिवार्य है।

भारतीय साहित्यकारों की चिन्तनधारा के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनके साहित्य सृजन की मूलभावना स्वान्तः सुखाय थी जिसका सम्बन्ध बहुजन हिताय से भी अवश्य था जिस प्रकार तुलसी के साहित्य का है। साहित्य सृजन की पृष्ठभूमि में व्यक्तिगत प्रचार का उद्देश्य नहीं था। अतः उनका व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से साहित्य में नहीं दिखाई देता। साहित्यकार के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये यह अनिवार्य है कि हमें यह मालूम हो कि वह किस युग में हुआ। उसके जीवन के विकास में संघर्ष किन किन रूपों में आये और उसने उन पर किस सीमा तक विजय प्राप्त की। इन सभी को एक सूत्र में पिरोने पर व्यक्तित्व की एक हल्की सी रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। जहां तक मीराँ के व्यक्तित्व का प्रश्न है, वह मीराँ के साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मीराँ के पदों में उनके जीवन के संघर्ष, व्यक्तित्व की महानता, प्रेम की तीव्रता, वेदना की छटपटाहट एवं अनुभवों की गहराई के दर्शन होते हैं। मीराँ के व्यक्तित्व का हल्का-सा रेखा चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

१. **मीराँ और उनका युग**—मीराँ ने जब आन्तरिक स्वर लहरी की मधुरिमा को फैलाना शुरू किया उस समय भारतीय जन-जीवन में भक्ति-भावना की प्रधानता थी। यह भक्ति-भावना प्रमुख दो मार्गों में होकर अग्रसर हो रही थी— एक को हम सगुण भावना कह सकते है और दूसरी को निर्गुण भावना। उन सभी धार्मिक भावनाओं के मूल में तन्मयता की भावना थी जो सभी मे कसी न किसी रूप में मिलती है। यह तन्मयता और प्रेम की भावना चाहे प्रभु को प्राप्त करने के तड़फन के रूप में व्यक्त की गई हो या सूफी काव्यकारो की अलौकिकता का आवरण पहन कर आई हो। सगुण भावना की इसी प्रेम के रंग में रंगी हुई थी।

---

१. A point of view : A. C. Benson.

मीराँ की उपासना माधुर्य भाव की थी। वे अपने प्रियतम को रिझाने के लिये विविध भेष धारण करने में लगती हैं। तो मानव उन भेषों के आधार पर सम्प्रदाय की सीमाओं में बांधने का प्रयत्न करते हैं। मीराँ ने अपने युग की प्रचलित सभी विचार धाराओं को स्वच्छन्ता से अपनाया था। वे तो प्रिय तक पहुँचने के माध्यम मात्र थे। मीराँ के कृष्ण निर्गुण और सगुण एक ही साथ हैं। प्रो० शंभुप्रसाद के शब्दों में "मीराँ ने योगियों की विचारधारा, संतों की प्रणाली, वैष्णवों की सौन्दर्य-प्रियता और लोक-जीवन की सरलता को अपने जीवन—काव्य में एक साथ ही समेट लिया है।"[1]

२. **मीराँ का सहज व्यक्तित्व**—Col. Tod अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि—mirabai was the most clebrated princess of her time or for beauty and romantic poetry.

मीराँ का जन्म राजस्थान के सुप्रसिद्ध राठौर राजघराने में हुआ था। वे अपने सौन्दर्य और प्रेम काव्य के कारण सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध थीं। अपने दादा से मीराँ ने वीरत्व और भक्ति-भावना का पाठ पढ़ा था। नृत्य एव संगीत की शिक्षा भी मीराँ ने पाई थी। मीराँ बचपन से ही कृष्ण की मूर्ति से प्रेम करने लगी थी। मीराँ के जीवन में विचारो की गहराई और वेदना की अनुभूति प्रारम्भ से ही थी। धीरे धीरे मीराँ का जीवन संघर्षो से उलझता गया। लौकिक प्रेम की उपेक्षा की दृष्टि से देखने से उनका वैवाहिक जीवन सफल नहीं हो सका। मीराँ को जीवन की नश्वरता से प्रेरणा मिली और वे प्रभु का स्मरण और भी अधिक तन्यमता से करने लगीं। मीराँ के सम्पूर्ण जीवन पर विवाद की छाया स्पप्ट है। मीराँ के सामाजिक बन्धन धीरे-धीरे टूटते रहे, और मीराँ का कृष्ण के साथ रागात्मक सम्बन्ध और भी दृढ़ होता गया। समाज के मध्य में कृष्ण की उपासना और साधुओं की संगत राजकुल की मर्यादा के लिये खतरा बनने लगी। राजा भोजराज और अन्य सम्बन्धी समझाने के प्रयत्न में सभी प्रकार असफल रहे तो उन्हें विविध यातनाएं भी दी जाने लगीं। मीराँ को मार डालने का प्रयत्न भी सम्भव है किया गया हो, परन्तु वे उसमें भी सफल नहीं हुए। मीराँ को उनके कार्यों से दुख हुआ परन्तु वे विष की तरह उसे पचा गई। मीराँ मेड़ते से बुलावा आने पर अपने पीहर चली गईं। मेड़ते में कुछ समय के लिये मीराँ ठहरी और वाद में तीर्थाटन के लिये चल पड़ी। उनके हृदय

---

१ :—जन्म जोगिण मीरा (मीरा-स्मृति ग्रन्थ)—प्रो० शम्भुप्रसाद बहुगुणा, पृ० २८

२ :—Annals and antiquities of Rajasthan : CL Tod.

में एहिक जीवन के प्रति विराग और अलौकिक जीवन के प्रति राग उत्पन्न हो गया। वे अपने विचार एवं सिद्धान्तों के प्रति प्रारम्भ से ही दृढ़ रही। ये सिद्धान्त प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही साथ मीराँ के जीवन में ढलते गये। मीराँ का सहज व्यक्तित्व एक ऐसी नारी का रूप प्रस्तुत करता है जो सौन्दर्य की प्रतिभा और विश्वासों की धनी है। मीरां का अपने प्रेम और प्रियतम पर अडिग विश्वास हैं और उसी के बल पर वह समाज के साथ संघर्ष करती रही।

मीराँ क्रांतिकारी नारी के रूप में—

लोक लाज कुल श्रृंखला तजि मीराँ गिरधर भजी।[1]

मीराँ ने अपने जीवन में परिस्थितियों के साथ लगातार संघर्ष किया। युगों से चलती आई रूढ़ीवादी परम्पराओं का विरोध करती हुई मीराँ कहती है कि "सती न होस्यां गोविन्द गास्यां" तो हमें उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता का स्पष्ट पता लगता है। मीराँ ने उन प्राचीन प्रथाओं का भी विरोध किया जो नारी को अपने आंचल में दम घुटने के लिये छिपा देती है। राजघरानों की संकीर्ण चाहर दिवारी और वैभव की चमक ने कभी भी मीराँ को अपनी ओर आकर्षित नही किया। अपने सिद्धान्तो का विरोध वे सहन नहीं कर सकती। जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें अपने प्रिय स्वजनों को भी छोड़ देना पड़ा। जीवन एवं मृत्यु ईश्वर का विधान है व्यक्ति उसकी सीमाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन साधारणतया नहीं कर सकता।

मीराँ ने समाज के मध्य में नृत्य और संगीत द्वारा अपने प्रियतम को रिझाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार की आजादी के विरुद्ध विविध विवाद खड़े हुए पर वह उनसे लगातार संघर्ष करती रही। राजकुल की लाज गवाईं साधां के संग में भटकी कहकर वह अपने विरोधियों का मुँह बन्द कर देती हैं। फिर भी राजकुल मीराँ की मृत्यु की कामना ही करता रहता है। मीराँ को मार डालने के प्रयत्न भी संभवतः किये गये थे परन्तु 'जाको राखे सांइयाँ मेट सके ना कोय' की यथार्थता हमें इसी समय दृष्टिगोचर होती है।

समाज के मध्य भक्ति का प्रसार करने के साथ ही साथ मीराँ को विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं के साथ संघर्ष भी करना पड़ा। वे वृन्दावन में गईं तो उन्हें रूप गोस्वामी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका परन्तु मीराँ ने जब उन्हें दूसरी बार उत्तर भेजा तो उनका हृदय भी इनसे मिलने के लिये पिघल पड़ा। यह कम से कम इस बात को तो साबित करता ही है कि मीराँ की वाणी और व्यक्तित्व

---

१ :—भक्तमाल (सटीक) नाभादास पृ० ९९४

में एक अजीब आकर्षण था जो मानव भावनाओं को मुग्ध करने में समर्थ था। उनकी क्रांतिकारी भावनाओं के पीछे एक स्वस्थ मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है। नारी जीवन के विकास का पथ-प्रदर्शन करती हुई मीराँ संकीर्ण बन्धनों को त्याग कर मुक्त वातावरण में विचरण करने का संदेस देती है। मीराँ अपनी क्रांतिकारी भावना और चिन्तन को जन-मन की गहराइयों में उतारने में सफल हुई। मीरां की इस भावना ने समाज में नारी के महत्त्व को बढ़ा दिया और नारी ने अपने आस्तित्व को समझते हुए सही कदम उठाया।

४ :—मीराँ का प्रेम

"Poets are all who love, who feel great truths, and tell them, and the truth of truth is love," —Brily

प्रेम के माध्यम द्वारा ही इस सृष्टि का संपूर्ण कार्य भार चल रहा है। प्रेम के आकर्षण में बंधे हुए प्रत्येक जड़ और चेतन भावी विकास की ओर अग्रर हो रहे हैं। जब यह विश्व प्रेममय है तो ईश्वर तो प्रेमस्वरूप हुआ ही। मीराँ ने उस प्रेम और सौंदर्य के अनन्त स्रोत ईश्वर को अपने बचपन से ही श्रद्धा एवं उपासना द्वारा प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। कल्पना एवं प्रेम की तीव्रता के कारण कृष्ण उनके साथ मानस लोक में बिहार करने लगे। मीराँ के जीवन का उद्देश्य ही प्रियतम को प्राप्त कर लेना था। मीराँ का प्रेम वह सच्चा प्रेम था जो स्थूल वासना के घेरों से कई स्तर ऊपर उठ चुका था। मीराँ के पूर्वानुराग के सम्बन्ध —में परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "उनके पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेह सिक्त लगाव, अपूर्व उलझन एवं दृढ़ निश्चय के भाव हैं, उनके हृदय में श्री गिरधारी लाल के प्रति जो मधुर रति है वही उनके पदों में प्रदर्शित विभाव, अनुभाव आदि द्वारा क्रमशः पुष्ट होकर मधुर रस का रूप ग्रहण करती हुई दिखाई देती है"।[१] मीराँ के काव्य में संयोग पक्ष और वियोग पक्ष का सुन्दर चित्रण हुआ है। मीराँ अपने आपको भी मिटाकर प्रियतम को पाना चाहती है,—क्योंकि प्रेम का मार्ग तो बहुत कठिन है, जैसा कबीर ने भी कहा है कि—

यह तो घर है प्रेम का. खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुईं इ धरे, सो पैठे घर माहिं॥

मीराँ भी प्रेममार्ग की कठिनाइयों को जानती हैं। कोई बिरला ही उस मंजिल तक पहुँच पाता है। मीराँ कहती हैं :—

---

१ :—मीराँबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ४६,

प्रीत करे तो बावरो रे करि तोडे तो कूर ।
प्रीत निभांवन दत पमरण, ते कोई विरला सूर ।।

मीराँ ने जीवन भर प्रेम, विरह और प्रियतम के गीत गाए। उनका प्रत्येक पद आत्मा की वेदना को व्यक्त करता है।

५. **मीरा की भक्ति-साधना**—मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की थी। मीराँ के पदों का प्रमुख विषय भक्ति ही है। भक्त अपने जीवन और चिन्तन को भगवान की ओर ही केन्द्रित करके उपासना करता है। मीराँ के आराध्य कृष्ण उसके प्रेमी, जन्म-जन्म के साथी और परम ब्रह्म ही थे। मीराँ ने कृष्ण को अपना पति स्वीकार कर लिया था। मीराँ के पदों में विरह—निवेदन की बहुलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि विरह के पद मीराँ की विरहणी आत्मा का क्रन्दन है जो प्रभु से विलग बेचैन सी रहती है। मीराँ का प्रेम आत्मा का परमात्मा से प्रेम कहा जा सकता है। मीराँ की तन्मयता से मुग्ध होकर भक्त एवं भावुक, राधा और गोपी का अवतार ही मानने लगे।

६. **मीराँ कवि एवं कलाकार के रूप में**—

'All great art is the expression of mens great delight in the gods work are not his own" —Ruskin.

प्रत्येक महान कला इश्वरीय कृति के प्रति मानव के आह्लाद की अभिव्यक्ति है। कलाकार अपनी कला के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाता है। मीरा सच्चे अर्थ में एक उच्च श्रेणी कलाकार थीं। मीराँ ने नृत्य और संगीत कला की बहुत उच्च शिक्षा पाई थी। मीराँ के नृत्य और संगीत ने जन-समाज को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। संगीत को विभिन्न राग-रागनियों द्वारा वातावरण में मधुरता का सृजन किया गया। राग गोविन्द मीराबाई का मल्हार तो आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं।

मीराँ कलाकार होने के साथ ही साथ उच्च श्रेणी की कवियित्री भी थीं। कवि के समान भावुकता सहृदयता और महानता उनके व्यक्तित्व से स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है। मीराँ के पदों की माधुर्यता भाव पक्ष और कलापक्ष में सुन्दर समन्वय को व्यक्त करती हैं। मीराँ को कई भाषाओं का ज्ञान था विशेष कर राजस्थानी ब्रजभाषा और गुजराती। मीराँ के पदों में उन तीनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। अन्य भाषाओं के शब्द भी स्थान स्थान पर आ गए हैं। मीराँ के व्यक्तित्व में कवि कलाकार और संगीतकार तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

७. **मीराँ का व्यक्तित्व और भ्रमपूर्ण धारणाएँ**—मीराँ के जीवन को

भक्तों ने कल्पना द्वारा विविध रूपों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उनकी लोकप्रियता के साथ ही साथ लोक-साहित्य में कुछ भ्रमपूर्ण धारणाएँ भी प्रचलित हो गईं और कुछ विद्वानों ने बिना किसी विशेष प्रमाण के ही उन्हें अपना लिया। उनमें से कुछ का हम यहाँ उल्लेख करेंगे—

(१) मीराँ की शिक्षा, नृत्य, संगीत और साहित्य-प्रियता देखकर कुछ लोगों ने मीराँ का सम्बन्ध राणा कुंभा से जोड़ने का प्रयत्न किया। राणाकुंभा के साथ साम्यस्तर सम्बन्ध स्थापित करते हुऐ जिन ग्रन्थों की टीका राणा कुंभा ने लिखी थी उसे भी मीराँ की रचना मान लिया।

(२) रावदूदा का व्यक्तित्व बहुत अधिक प्रभाव-शाली था। मीराँ ने उन्ही से जीवन के आदर्शों को सीखा था। दूदा ने ही मीराँ को भक्ति का पाठ पढ़ाया था। इस आधार को लेकर ही कुछ ने मीराँ को रावदूदा की पुत्री सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

परन्तु एतिहासिक खोज के द्वारा उपर्युक्त दोनों ही विचारधाराएँ निरर्थक सिद्ध की जा चुकी है।

(३) प्रत्येक सम्प्रदाय यह चाहता है कि उसकी बहुत अधिक प्रसिद्धि हो। अत: जो भी व्यक्ति प्रसिद्धि की ओर बढ़ता है, जिसे बहुत अधिक लोक-प्रियता प्राप्त हो जाती है उसे हर सम्प्रदाय अपने साथ संबंधित करने का प्रयत्न करते है। मीराँ के साथ भी बहुत कुछ इसी तरह हुआ। युग के प्रचलित अधिकाश संप्रदाय में दीक्षित हुई थी। परन्तु निष्पक्ष भाव से मीराँ ने किसी सम्प्रदाय विशेष को नहीं अपनाया।

(४) के अध्ययनमनोविज्ञान के पश्चात कुछ विद्वान आलोचकों ने प्रत्येक के मूल में काम भावना को ही ढूढ़ना प्रारम्भ कर दिया है। इससे भी एक कदम आगे चलकर सर जार्ज मेकमन तो मीराँ को वेश्या ही मान बैठे है—

"उसी शताब्दि में राजपूताने में मीराबाई हुई, जो काम लिप्सा तथा शक्ति की वैष्णव उपासिका थी, संसार के आनन्दमय प्रेमी गोपीनाथ कृष्ण की कीर्ति की उत्साह पूर्वक गायिका थी तथा लिंग योनि के रहस्यों की उपदेशिका थी। वह वैश्याओं की गुण ग्राहिका समझी जाती है।"[1]

उपरोक्त भ्रान्त धारणाओं का विरोध करते हुए विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

---

१. सर जार्ज मेकमन रचित the under world of india में व्यक्त, एवं यहाँ पर मीरां माधुरी-ब्रजरत्नदास पृ० ८६ से उद्घृत—

लिखते हैं कि "मीरां वासना के स्वर से बहुत उपर उठ चुकी थी। जो मीराँ की रचना की छानबीन में आधुनिक नूतन मनोविज्ञान का सहारा लेते है, उन्हें यह भी अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि दमित वासना परिवाह के द्वारा परिष्कृत उदात्त रूप धारण कर लेती है, यह तथ्य भी नूतन मनोविज्ञान को ग्राह्य है।"[1]

मीराँ का कृष्ण से प्रेम साहित्वक था, उसे लोक की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। अतः मीरां पर वासना का आरोप उचित नहीं जान पड़ता है। इसी का समर्थन करते हुए प्रो० पाण्डेय कहते हैं कि "एक उलटी खोपड़ी के अंगरेज ने इससे झल्ला कर फ्रायड के मनोविज्ञान के नशे में यह कह मारा था कि मीराँ की कविता उसके वैध्वय की करामत है। मिस्टर को यह तो सपना ही नहीं हुआ था कि मीराँ की भक्ति का श्री गणेश मीराँ के वाल्यकाल ही में नहीं जन्म-जन्मान्तर से था। पूरब जनम का कोल उसे भास जाता था। परन्तु यह भासने के लिए आजकल के उच्चकोटि के विज्ञान की आवश्यकता है जिसका अभी योरप अभी भी अविष्कार नहीं कर पाया है।"[2]

८. **जनश्रुतियों से आच्छादित मीराँ का व्यक्तित्व**—व्यक्ति अपनी महानता के कारण समाज का प्रिय हो जाता है। समाज उस व्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है। उसकी महानता की चर्चा वाणी से विविध रूप में प्रकट होने लगती है। कल्पना के सहारे लोक मानस में उसके संबंध में अनेक काल्पनिक तथ्यों का समावेश हो जाता है। मीरां के सम्बन्ध में भी लोक-मानस में ऐसी कल्पनाएँ उलझती गईं जिनका समाधान भी एक समस्या हो गई है। ईश्वर की महानता के प्रति श्रद्धालु भक्त जब सीमा से अधिक धूप, दीप और पुष्पो का प्रयोग करता है तो उस मूर्ति का रूप वाह्य अलंकारों से छुप जाता है। यही हालत उस व्यक्ति के जीवन की भी होती है जो अतिश्रद्धा के कारण जन-मन में समय के साथ-साथ अपने रूप को बदलता रहता है। मीराँ के नाम जीवन और साहित्य के सन्बन्ध में भी लोक-मानस में विविध विश्वासों के क ारण अनेकरूपता आ गई है। उनमें प्रमाणिकता को ढूंढ़ना एक कठिन समस्या बन जाती है। मीराँ के जीवन के संबंध में अनेक घटनाएँ प्रचलित हैं जिनमें कल्पना की ही प्रधानता है, तथ्य बहुत कम या है या है ही

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के जनभारती वाले निबन्ध से—

२. "मिस्टिक लिपिस्टिक और मीराँ" (मीरा स्मृति ग्रंथ) : प्रो० शिवाधार पाण्डेय पृ० २२

नहीं। लोक साहित्य में जन श्रुतियों ने मीरां के रेखा चित्र को विभिन्न रंग-कल्पना के द्वारा भर दिया है। जिनकी खोज बीन शोध का विषय है।

९. **मरुस्थल की मंदाकिनी मीरा**—भारतीय जन-जीवन में कृष्ण की उपासना कई भक्तों ने की है। मीराँ की उपासना में तन्मयता, वेदना और हृदय की वह सच्ची पुकार है जो जन-मन को आत्म-विभोर कर देती है। वेदना के क्षणों में जो कुछ भी उन्होंने सोचा काव्य के रूप में उसे अमर कर दिया। नारी-जीवन की भावनाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन का श्रेय मीरां को ही है। मीराँ ने प्रेम, साहस, गीत, संगीत और नृत्य की एक ऐसी मन्दाकिनी प्रवाहित की जिसने जन-मानस को आप्लावित कर दिया। मीरा के सम्बन्ध में गुप्त जी लिखते हैं—

लाख लोक भय बाधाओं से विचलित हुई न वीरा,
वार गई, ब्रजराज पर मानिक मोती हीरा धीरा।
हरि चरणामृत कर वर विष भी पचागयी गंभीरा,
नचा गई नट नागर को भी नाची तो बस मीरां।।

—मैथिलीशरण गुप्त

४

मीरां की प्राप्त साहित्यिक सामग्री

मीरां की शिक्षा राव दूदा की निरीक्षणता में हुई। मीरां ने साहित्य, नृत्य और संगीत की शिक्षा पाई थी। मीरां ने राव दूदा से वीरत्व के साथ ही साथ उच्च कोटि की भक्ति भावना को भी सीखा। यहीं पर ईश्वर प्रेम की बेलि अपने प्रथम रूप में प्रगट हुई, जो धीरे-धीरे विकसित होती रही। कुछ समय के लिये मीरां को अनुकूल वातावरण मिला। नृत्य और संगीत कला को आत्मा के स्वर मिल गये, जिन्होंने अपनी साधिका को साधना की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। मीरां के सामाजिक बन्धन एक एक करके टूटने लगे और वह अलौकिक धरातल पर अपने प्रिय गिरधर की झांकी देखने लगी। मीरां ने हृदयगत भावनाओं को अपने प्रिय के सामने व्यक्त किया। "मीरां ने कविता व्यवसाय के लिये नहीं की थी, यह तो उनके हृदय में व्याप्त गिरिधर के प्रेम का स्वाभाविक परिणाम था"।[१] मीरां ने अपने जीवन, अनुभव और दर्द को पदों के द्वारा व्यक्त किया। मीरां ने अपनी हृदय-जनित अनुभूतियों को जिस रूप में व्यक्त किया, वही साहित्य बन गया मीरां के नाम पर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं; उनमें प्रमुख निम्न हैं—

१. नरसी रो माहेरो
२. राग-गोविन्द
३. राग-सोरठ पद संग्रह
४. मीरां बाई का मलार
५. गीत-गोविन्द की टीका
६. गर्वा-गीत

---

१. मरांबाई : जीवनी और कविता—श्री कुंवर कृष्ण बी० ए०.

७. सत्यभामा नों रूसणों

८. मीराबाई की पदावली

इस प्रकार मीराँ के नाम पर सात पुस्तकें और कुछ फुटकर पद मिलते हैं। मीरां के नाम पर जो पुस्तकें प्राप्त हैं उन पुस्तकों की प्रमाणिकता विवादास्पद है। उनके सम्बन्ध में हम इस प्रकार लिख सकते हैं—

१. **नरसी रो मोहेरो**—यह ग्रन्थ मीराबाई रचित बताया जाता है। डा० सावित्री सिन्हा ने इसे मीराँ की कृति माना है।[१] इसमें प्रसिद्ध भक्ति नरसी के माहेरा भरने की घटना का वर्णन है। डा० दशरथ ओझा भी इसे मीरां रचित ही मानते हैं।[२] नरसी जी रो माहेरो ब्रजभाषा की एक बहुत ही नीरस और सामान्य कोटि की रचना है।[४] इसे मीरां की मानने में संकोच होता है।[५] नरसी रो मोहेरो तो रतन खाती की रचना है।[६] परन्तु अधिकांश विद्वान इसे मीराँ रचित नहीं मानते हैं। इस प्रकार भाषा देखने से ही यह सिद्ध हो जाता है कि यह मीराँ रचित नहीं हो सकती। मीराँ तो प्रति क्षण अपने प्रियतम को उपासना में ही तनमय रहा करती थी।

२. **राग-गोविन्द**—महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के मतानुसार मीराँ ने इस नाम का एक कविता ग्रन्थ लिखा था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे मीरां की रचना मान लिया है। परन्तु इस नाम की कोई स्वतन्त्र पुस्तक हमें नहीं प्राप्त होती है। सम्भवतः इस राग के कुछ पदों का संकलन कर लिया गया हो। मीरां ने इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा।

३. **राग-सोरठ पद संग्रह**—मिश्र बन्धुओं ने इस ग्रन्थ की चर्चा अपनी पुस्तक में की है। यह राग भक्त कवियों का प्रिय राग रहा है। मीरां ने भी इस राग के कुछ पद लिखे हैं, परन्तु इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हमें प्राप्त नहीं होता है। सम्भव है कि इस राग के कुछ पदों का संकलन करके बाद में आने

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवियत्रियां—डा० सावित्री सिन्हां.

२. सुकवि समीक्षा—डा० दशरथ ओझा, पृष्ठ ८१.

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया पृ० १४७.

४. मीरांबाई : डा० श्रीकृष्णलाल पृ० ८०.

५. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी—पृ० ३२३.

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८४.

वाले भक्तों ने ग्रंथ का रूप दे दिया हो। मीरां ने इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा।

४. **मीराबाई का मलार**—मलार एक प्रकार का लोक-गीत है जो लोक जीवन में बहुत ही प्रसिद्ध और प्रिय है। मीरांबाई का मलार आज भी बहुत लोकप्रिय है। परन्तु मीरां ने इस प्रकार का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो संभव नहीं प्रतीत होता है। मलार के आधार पर मीरां के कुछ पद मिलते हैं, उन्हीं आधार पर ग्रन्थ की संभावनाएं विद्वानों को दृष्टिगोचर होने लगीं, पर वास्तव में मीरां ने इस नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा।

५. **गीत-गोविन्द की टीका**—यह ग्रन्थ राणा कुम्भा की रचना है। भ्रम से राणा कुम्भा द्वारा लिखी हुई टीका को मीरां के नाम के साथ जोड़ दिया गया है। राणा कुंभा पर गीत-गोविन्द की चिन्तन धारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। राणा कुम्भा ने उसी से प्रभावित होकर यह टीका लिखी थी। मीरां पर गीत-गोविन्द का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है और नही इसे मीरां की प्रमाणित करने के लिये हमारे पास कोई ठोस प्रमाण हैं।

६. **गर्बा-गीत**—के. एम. झावेरी ने गुजरात में प्रचलित अनेक गर्बा-गीतों को मीराँ की रचना माना है। इस प्रकार के गीतों को 'मीराँनी गरबो' कहा जाता है। ये गीत लोक साहित्य में विविध रूपों में मिलते हैं। मीराँ ने कितने गीत लिखे इस संबंध में अभी तक बहुत वाद-विवाद है। इस प्रकार के गीतों की कोई प्रमाणिक प्राप्ति हमें नहीं प्राप्त होती है। लोक में प्रचलित गीतों से छान-बीन करना एक कठिन समस्या है।

७. **सत्यभामा नो रूपणो**—यह ग्रन्थ मीराँ के नाम से प्रचलित है। इस पुस्तक की भाषा गुजराती है। इसकी चर्चा डा० मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक राजस्थानी भाषा और साहित्य में की है। ब्रजरत्नदास ने मीरां-माधुरी में इसके कुछ उदाहरण भी दिये हैं। विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यह मीराँ रचित नहीं है।

८. **मीराँ की पदावली**—मीराँ ने अपनी हृदयगत अनुभूतियों को प्रेम पदों के द्वारा व्यक्त किया है। ये गेय पद लोक जीवन में बिखरे हुए हैं। मीराँ की पदावली सबसे अधिक लोक प्रिय है। मीरां की पदावली का सम्पादन कुछ प्रमुख विद्वानों ने किया है। जिनमें ब्रजरत्नदास, नरोत्तम स्वामी, ललिता प्रसाद शुक्ल और परशुराम चतुर्वेदी प्रमुख हैं।

मीरा स्मृति ग्रन्थ में सुकुल जी ने हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर मीरां

की पदावली प्रस्तुत की है।[1] "सुकुल जिन्होंने दो प्रतियों के आधार पर मीरांस्मृति ग्रंथ में मीरां की पदावली दी है। परन्तु खेद है कि उसका उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। उनकी भाषा बिलकुल भ्रष्ट है। उसमें व्याकरण संबंधी भद्दी भूलों की भरमार है। इस प्रकार की अनेक पदावलियाँ मिलती हैं। परन्तु कसौटी पर कसने पर ये खरी नहीं उतर पाती हैं। कुछ ऐसे संकलन भी देखे गये हैं जिनके पद भाषा और भाव की दृष्टि से मीरां के तो हो ही नहीं सकते।"[2] इस प्रकार के संकलनों पर व्यंग्य करते हुए डा० मेनारिया ने लिखा है कि "मालूम पड़ता है, राजस्थानी भाषा से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति ने यह सारा जाल रचा है।"[3]

मीरां की पदावली के सम्पादन में परशुराम चतुर्वेदी, नरोत्तम स्वामी और बृजरत्नदास की सम्पादित पुस्तकें बहुत महत्वपूर्ण हैं। मीरां के फुटकर पदों की संख्या के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। कुछ विद्वान मीरां के पदों की संख्या २०० और उससे भी कुछ कम बताते हैं। के. एम. झावेरी ने गुजराती भाषा के कुछ पदों को लेकर इनकी संख्या २५० तक होना बतलाया है। पुरोहित हरनारायण जी ने मीरा के पदों का संकलन किया है और उनकी राय है मीरां के पदों की संख्या करीब ५०० है। 'मीरां सुधा-सिन्धु' में पदों की संख्या १३१२ बतलाई गई है। इस प्रकार मीरां के पदों की निश्चित संख्या कितनी है यह बताना एक कठिन कार्य है।

मीरां के पदों की सत्यता का पता लगाने के लिये अभी तक छान-बीन की बहुत आवश्यकता है। मीरां के नाम को जोड़ कर विभिन्न पद लोक साहित्य में प्रचलित हो गये हैं। कुछ विद्वान ऐसा सोचते हैं कि लोक प्रचलित पदों का ही संकलन कर लेना चाहिये पर वास्तव में इतना ही कर लेना काफी नहीं है। मीरां के पदों के साथ ही साथ प्रक्षिप्त पदों की छान-बीन भी शोध का विषय है।

---

१. मीरां-स्मृति ग्रन्थ में ललित प्रसाद शुक्ल द्वारा संकलित पदावली

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी.

३. राजस्थानी-पिंगल साहित्य—डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ६४

५

मीराँ-साहित्य के मूल प्रेरणा स्त्रोत

साहित्य शब्द बहुत व्यापक है । सम्पूर्ण जीवन रूपों का अध्ययन उसमें होता है । साहित्य को जीवन की व्याख्या और आलोचना भी कहा गया है । साहित्य भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है । साहित्यकार के जोवन की परिस्थितियां, अनुभव, समाज का वातावरण, प्रेरणा और प्रयोजन किसी न किसी रूप में अपने को साहित्य में व्यक्त कर ही देते हैं ।

साहित्य की मूल प्रेरणा के संबंध में कुछ मोटे तोर पर सिद्धान्त निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है । हम पहले भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर साहित्य के मूल प्रेरणा और प्रयोजन सम्बन्धी चिन्तन को प्रस्तुत करेंगे—

१. वृहदराण्यक उपनिषद में पुत्रैषणा, विशेषणा और लोकेषणा को साहित्य की प्रेरणा माना है । साथ ही यह भी लिखा गया है कि उच्चस्तरीय चिन्तन वाले व्यक्तियों को इनकी भी चाह नहीं रहती है ।

२. साहित्यकार साहित्य सृजन आत्मसंतुष्टि के लिये करता है । उसकी प्रेरणा कुछ साधना करने की प्यास होती है । यह चिन्तन की भावना स्व की संतुष्टि के लिये ही होती है । इस प्रकार के साहित्यकार अपने साहित्य का उद्देश्य स्वान्तः सुखाय बनाते हैं ।

३. साहित्य के मूल में लोक के प्रति प्रेम की भावना होती है । यह प्रेम की भावना लोक-कल्याण चाहती है, इसलिये साहित्य का प्रयोजन बहुजन-हिताय के रूप में कहा गया है । लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही साहित्यकार की कलम चलती है ।

४. कालिदास ने साहित्य की मूल प्रेरणा आदि रस माना है । साहित्य की मूल प्रेरणा के साथ ही साथ उनके प्रयोजन की चर्चा भी आवश्यक हो

जाती है। अतः हम साहित्य के प्रयोजनों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि काव्य केवल मनोरंजन का ही विधान नहीं करता। वरन् उसमें धार्मिक, नैतिक और साहित्यिक प्रेरणाएं भी पाई जाती हैं।[1]

२. भामह ने साहित्य के प्रयोजन में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को प्रधान माना है।[2]

३. मम्मट ने लिखा है कि काव्य यश के लिये, अर्थ के लिये, व्यवहार ज्ञान के लिए, कल्याण के लिए, सद्यः शान्ति के लिए और कान्ता सदृश उपदेश के लिए लिखा जाता है।[3]

४. आनन्द ही काव्य का प्रयोजन है।[4] आनन्द को प्राप्त करने की भावना ही प्रेरणा का कार्य करती है।

भारतीय दृष्टिकोण के आधार पर साहित्य की प्रेरणा और प्रयोजनों की चर्चा ऊपर हमने की, साथ ही हम पाश्चात्य विद्वानों के मत को भी यहां उद्धत करेंगे—

१. साहित्य का मूल आनन्द की भावना है। अरस्तु के मतानुसार काव्य मनुष्य को Supreme Happiness अर्थात् परम आनन्द देता है। साहित्य का प्रयोजन उस आनन्द को प्राप्त करना है।

२. हेनरी हडसन ने साहित्य को जन्म देने वाली चार प्रवृत्तियाँ मानी है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

(i) Our desire for self expression

अर्थात् आत्माभिव्यक्ति की कामना—

(ii) Our intrest in the People and their doings.

---

१. नाट्यशास्त्र १, १०६, ११०, ११०, ११५.

२. धर्मार्थकामोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्॥ भामह

३. काव्यं यश से अर्थकृते व्याहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयजु॥ मम्मट.

४. सकल प्रयोजन मौलिभूतं समन्तरयेव रसास्वादनसमद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्। मम्मट.

अर्थात् मनुष्य और उनके कार्यों के प्रति हमारा लगाव—

(iii) Our intrest in the world of reality in which we live and in the world of imagination which we Carjma in the existenee.

अर्थात् यथार्थ जगत के प्रति हमारा आकर्षण और कल्पना जगत के निर्माण की प्रवृत्ति—

(iv) Our love of form a form.

अर्थात् रूप विधान की कामना[1]

३. Poetry is a spontonus over Flow of Powerful feelings recollected in the mouments of Tranquality wordsworth.

उपर्युक्त विद्वानों के मतों का अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि काव्य में मानव की हृदयगत अनुभूतियाँ होती हैं जो उचित समय पाकर अपने रूप को प्रकट करती रहती हैं। मानव की इस भावना को आत्माभिव्यक्ति की कामना कहा गया है। उसके मूल में है आनन्द की प्राप्ति। आत्मा को जिससे सतुष्टि मिले और वह अपने को किसी और के सामने व्यक्त कर सके यही भावना साहित्य की पृष्ठभूमि में कार्य करती रहती है। आनन्द की प्राप्ति ही काव्य की प्रेरणा और लक्ष्य है।[1]

साहित्य को मूल-प्रेरणा और प्रयोजनों संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण को हमने यहाँ प्रस्तुत किया। इन सभो के मूल मे व्यक्ति उसके जीवन की परिस्थितियों एवं समाज ही ऐसे प्रधान तत्व हैं। जो उसे प्रेरणा देते रहते है। किसी भी साहित्यकार की प्रेरणा क्या थी इस विषय का अध्ययन करनें के लिए हमें उस व्यक्ति के जीवन और साहित्य का अध्ययन करना होगा। साहित्य, जीवन और समाज से प्राप्त सत्यों का विश्लेषण कर हम प्रेरणा संबंधी भावना को बताने में समर्थ होंगे। मीराँ के साहित्य की मूल-प्रेरणा के सम्बन्ध में जब अध्ययन करने से कुछ ऐसे प्रमुख तत्व मिलते हैं जिनका किसी न किसी सीमा तक प्रेरणा से संबंध है। हम उनको इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. **पूर्व जन्म का संस्कार**—भारतीय दर्शन युगों से जीवन और जगत

---

१. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-प्रथम भाग : डा० गोविन्द त्रिगुणायत पृ० ६ से उद्धृत.

के सत्यों को ढूढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहा है। इस जीवन के आगे क्या है ? की भावना दर्शन की आज भी एक महत्वपूर्ण चिन्तन सामग्री है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि आत्मा अजर, अमर है। जिस प्रकार हम वस्त्र बदलते हैं, उसी प्रकार आत्मा भी तन रूपी वस्त्रों को बदलती रहती है।[1] आत्मा का यह चक्र विविध रूपों में चलता ही रहता है। इस जन्म में वह जो कुछ कर रहा है वह पूर्व जन्म के संस्कारों की पृष्ठभूमि पर कर रहा है। भारतीय साहित्यकारों की भी पूर्वजन्म और पुर्नजन्म मे आस्था रही है। मीरां के प्रेम की तीव्रता और तन्मयता देखकर विद्वानों ने उसे पूर्वजन्म की गोपी कहा है।[2] काका कालेलकर ने तो उन्हें राधा जी का अवतार ही माना है।[3] मीरॉं की पूर्वजन्म में दृढ़ आस्था थी। मीरां के पदों मे पूर्वजन्म के सम्बन्ध में चर्चा मिलती है। मीरॉं कृष्ण के साथ अपने जन्म-जन्म के संबध को मानती है। आत्मा अमर है और उसका शाश्वत राग ही उसे अमरता प्रदान करता है। मीरां पूर्वजन्म के सम्बन्ध में लिखती हैं—

१. नाच नाच म्हां रसिक रिझावां, प्रीति पुरातन जांचस्यां री—
२. बड़े घर तालो लागो री पुरवला पुन्न जगावां री—
३. मैं तो दासी थारा जनम जनम की—
४. पूरव जनम की प्रीत पुराणी, जावा णा गिरधारी—
५. पूरब जनम की प्रीति पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय—
६. मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल रहाऊँ—

उपर्युक्त पदों में मीरां ने पूर्वजन्म के सम्बन्ध में अपनी आस्था को व्यक्त किया है। कृष्ण के साथ मीरां का सम्बन्ध जन्म जन्म का है। पूर्व जन्म के संस्कारों की पुष्ठभूमि पर ही बचपन से ही मीरां कृष्ण की मूर्ति से प्रेम करने लगी थी। अनुकूल परिस्थितियां पाकर वही प्रेम पल्लवित हुआ।

---

१. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।
नवानि गृहति नरो पराणि ॥
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा —
न्यन्यानि संयाति नवानि देही। गीता० अ० २।२२

२. सदृश गोपिका प्रेम कलजुगहिं दिखायो—भक्तमाल.
ब्रज गोपी का अवतार— राग कल्पद्रुम, प्रथम भाग पृ० ३२७,

३. जीवन साहित्य, प्र० सं० १९३७, जन्माष्टी का उत्सव पृ० ३८ काका कालेलकर.

२. **प्रेम की तीव्रता**—मीराँ के हृदय में शाश्वत प्रेम की ज्योति प्रज्वलित हो रही थी, वही प्रेम साधना की गरिमा मे तप कर जीवन को प्रेरणा देता रहा। कल्पना की तीव्रता और पूर्वजन्म के संस्कारों के फल स्वरूप मानस लोक मे मीराँ कृष्ण के साथ विविध रूपों में मिलन करने लगीं। मीराँ के जीवन मे प्रेम की ही तो मधुमय की धारा है जो वेलि रूप में, इस जीवन मे भी भावनाओं के माध्यम से कृष्ण के सान्निध्य में रहना चाहती है। प्रेम आत्मा का सौन्दर्य है। मीराँ प्रेम-साधना द्वारा अपने प्रियतम से मिलना चाहती है। मीराँ का प्रियतम भी तो कोई साधारण प्राणी नहीं प्रेम का अथाह सागर है। श्रीकृष्ण ने भी गीता में लिखा है कि जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं वे मेरे और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।[1] प्रेम की तीव्रता के कारण मीराँ के प्रिय तो उसके हृदय में ही निवास करते हैं। यह प्रेम ही मीराँ को प्रेरणा देता रहा।

३. **मीराँ के जीवन की परिस्थितियाँ**—मीराँ का जीवन ही उसे बहुत अधिक सीमा तक प्रेरणा देता रहा। बचपन से ही मीराँ के हृदय में कृष्ण के प्रति निष्ठा और प्रेम के भाव जाग्रत हो गये थे। लेकिन प्रेम के प्रति मीराँ का आकर्षण न था। मीराँ किसी भी विधि से अपने उपास्य, प्रियतम और पति कृष्ण को प्राप्त करना चाहती थी।

---

१. समो हं सर्वभूतेषु नं मे द्वेष्यो स्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मं भक्तया मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ गीता-अ० ९।२९

२. म्हारा पियां म्हारे हीयड़े बसंता णा आवां णा जाती।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवां दिण राती।
—मीरांबाई की पदावली-पृ० २३

३. नहीं भावै थांरों देसलड़ो रंगरूड़ों
थारे देसां में राणा साध नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो ॥१॥
सीसोधो रूठयो तो म्हांरो कांई कर लेसी ॥२॥
४. सती न होस्यां गोविन्द गास्यां ॥३॥
५. लोक लाज कुलरा मरज्यादां जगमां एकणा राख्यां री ॥४॥
भज मन चरण कंवल अवणासी।
जेताइ दीसां धरण गगन मां, तेताई उठ जासी ॥५॥
मीरांबाई की पदावली।

मीराँ की प्रारम्भिक शिक्षा रावदूदा के निरीक्षण में हुई थी । मीराँ ने वीरत्व एवं भक्ति-भावना का पाठ नहीं पढ़ा था । मीराँ के हृदय में वीरत्व की पृष्ठभूमि अपने उज्जवल रूप में उपस्थित थी । मीराँ ने विरोधी परिस्थितियों के साथ कभी भी समझौता करना साधारणतया नहीं चाहा । वीरत्व की भावना ने मीराँ के हृदय में क्रांतिकारी विचारों को प्रोत्साहित किया । युगो से दबी हुई नारी जीवन की विवशता ने सामाजिक बन्धनों को ठुकरा दिया और मीराँ के रूप में फिर से उन्होंने समाज के मध्य में पदार्पण किया ।

बचपन से ही मीराँ कृष्ण की मूर्ति से प्रेम करने लगी थीं । मीराँ को जीवन की विरोधी परिस्थितियों से लगातार संघर्ष करना पड़ा । बचपन से ही माता-पिता का प्रेम न मिल सका और यौवन मे राणा का विरोध रहा तो उन्हें इस जीवन के प्रति राग होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । मीरां के स्वजनो की मृत्यु ने भी उसे इस संसार की क्षण भंगुर नश्वरता का संदेश दिया ।

जीवन की परिस्थितियाँ मीरां को प्रेरण देती रहीं । वे अपने अलौकिक प्रियतम की उपासना में ही जीवन का साफल्य समझने लगीं और प्रिय मिलन ही जीवन का लक्ष्य बन गया । वे अपने अस्तित्व को मिटाकर भी प्रिय से मिल जाना चाहती हैं । इसी भावना ने उनके व्यक्तित्व को गम्भीर बना दिया । वे अपने प्रिय की खोज में चल पड़ी और उस मन्जिल की ओर जहाँ कभी न कभी तो प्रिय से मिलन होगा ही ।

४. **गुरू के द्वारा मीराँ को प्रेरणा**—साधना मानव जीवन का लक्ष्य है । वह साधना किसी भी रूप मे हो परन्तु एक तत्व आवश्यक है और वह है ऐसे व्यक्ति का होना जो साधक को सही मार्ग की ओर अग्रसर कर सके । गुरू का महत्त्व अधिकांश साहित्यकारों ने स्वीकार कर लिया है । गुरू ही अपने शिष्य का सही पथ-प्रदर्शन करता है जिससे वह अपने लक्ष्य पर पहुँच सके । मीराँ के गुरू कौन थे इस सम्बन्ध में अभी तक अन्तिम निर्णय नहीं हुआ है । मीराँ ने अपने पदों में गुरू की महता को स्वीकार किया है । किसी अज्ञात साधु या सन्त से भी मीराँ को प्रेरणा मिली थी । मीराँ के जीवन के विकास मे सतगुरू का पथ-प्रदर्शन बहुत ही महत्त्व पूर्ण है । सतगुरू ने ही मीराँ के जीवन को सही मार्ग की ओर अग्रसर किया है । सतगुरू और ब्रह्म के बीच में कोई भेद नहीं हैं । मीराँ गुरू और गोविन्द को समान आदर से देखती है ।

मीराँ के पदों में गुरू की विशेष रूप से चर्चा की गई है । ये गुरू मीराँ को सही मार्ग की ओर अग्रसर करने वाले हैं । उन्होंने अज्ञान रूपी किवाड़ों को खोला

और भ्रम में फंसी हुई मीराँ को उसका सही लक्ष्य बताया। गुरू के सम्बन्ध में निम्नांकित पद महत्त्वपूर्ण हैं।

१. **गुरू रैंदास मिले मोंहि पूरे धुर से कलम भिड़ी।**
   सतगुरू सैन दई जब आके जोत में जोत अड़ी।

२. **सतगुरू म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।**

३. **गुरू म्हारे रैंदास सरवन चित सोई।**

४. **री मेरे पार निकस गया सतगुरू मारया तीर।**

उपर्युक्त पदों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि मीराँ को प्रेरणा देने वाला उसका गुरू था। बचपन से मूर्ति देकर जिस भावना को उसने जन्म दिया उसे समय-समय पर वह सही मार्ग की ओर भी अग्रसर करता रहा। वह कौन था? यह जाने बिना भी हम उसके आस्तितत्व के सम्बन्ध मे शंका-शील नहो हो सकते। गुरू युग की मान्यताओं और आस्थाओ के केन्द्र बिन्दु है। मीरॉ के लिये प्रेरणा का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

५. **जोगी विशेष से प्रेम और प्रेरणा**—कुछ विद्वानों की ऐसी राय रही है कि मीराँ को किसी जोगी विशेष से प्रेम था। डा० सावित्री सिन्हा का मत है कि मीरॉ के आराध्य का दूसरा निर्गुण पंथी रूप पूर्णतया लौकिक है। जिस योगी के प्रेम मे वह व्याकुल है, वह एक साधारण योगी है, जो उसके मन में प्रेम की अग्नि लगाकर चला गया है।[1] डा० सिन्हा ने इस सम्बन्ध मे कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये है। प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव कहते है कि "जोगी के प्रति प्रेम निवेदित किया गया है। यह गुरू से अनुरोध कभी नहीं हो सकता। यह तो प्रेमिका का प्रेमी से अनुरोध है"[2] वास्तव मे मीराँ का अध्ययन उसकी युग और परिस्थितियों के आधार पर करना चाहिये। मीरॉ का प्रेम भाव-लोक की वस्तु है। वासना तो उसके सीमा रेखा को भी नही छू पाई है। जब विद्वान यह सोचते हैं कि जोगी के प्रति मीरॉ का निवेदन लौकिक है और वे लौकिक धरातल पर प्रणय निवेदन कर रही हैं तो क्या अलौकिक धरातल पर प्रणय निवेदन संभव नहीं है? और वह एक साधारण योगी है जो उसके मन मे प्रेम की अग्नि लगाकर चला गया है। उसके साधारण और असाधारण की सीमा रेखा क्या है?

६. **आधुनिक मनोविज्ञान और मीरॉं :**- आधुनिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण प्रणाली ने साहित्य के अध्ययन और आलोचना की मान्यताओं मे एक

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कवित्रियां : डा० सावित्री सिन्हा पृ० १२६.
२. मीरां दर्शन : प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव पृ० १०८.

नई कड़ी को जोड़ दिया है। नूतन मनोविज्ञान का सहारा लेकर साहित्य की मूल प्रेरणा के सम्बन्ध में छान-बीन प्रारम्भ हुई। मीरां के सम्बन्ध में दो मत हमारे सामने आये—

१, मीराँ को किसी जोगी विशेष से प्रेम था और प्रेम असफल होकर मीरां ने साहित्य सृजन किया।

२. मीरॉ पर वासनात्मक भावनाओं का आरोप लगाकर मेकमन ने मीराँ को वेश्या के रूप में ही स्मरण किया है।[१]

उपर्युक्त दोनों ही मत सत्यता से बहुत दूर हैं। हमने इन दोनों की आलोचना पिछले पृष्ठों में की है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि मीराँ वासना के स्वर से बहुत ऊपर उठ चुकी थी।

निष्कर्ष :—मीरॉ की प्रेरणा का कोई एक मूल उद्गम नहीं है। जीवन के विकास और समाज की परिस्थितियो ने उन्हे प्रेरित किया। मीराँ का जीवन, अनुभव और दर्द ही उनकी मूल प्रेरणा रही हैं। अनन्त के प्रति असीम प्रेम और ईश्वरीय विधान सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। मीराँ के व्यक्तिगत जीवन में लौकिक प्रेम का अभाव रहा। पूर्वजन्म—एवं वचपन के संस्कार धीरे-धीरे पनपने लगे। आत्मा की वेदना और प्रिय के प्रति निवेदन काव्य के रूप में बह चला। मीराँ ने जो कुछ गाया वही काव्य बन गया।

---

३. सर जार्ज मेकमन रचित Under world of india में—" यहाँ मीरां माधुरी वृजरत्नदास पृ० ८९ से उद्धृत

६

मीराँ की प्रेम साधना

Love ! what a volume in word !
An oceon in a tear !
A seventh heaven in a glance !
A whirlwind in a sigh !
the lightning in a touch !
A millennium in a movment !
what concentrated joy or woe!
In blessed or blighted cove !

—TAPPE

प्रेम केवल एक शब्द का यह कैसा वृहद् ग्रन्थ है। एक ही आँसू का कितना विशाल सागर है। ओह ! एक ही दृष्टि में सातवाँ स्वर्ग दिखाई दे रहा है। एक ही आँसू ने कैसा बन्डर उठा दिया है। एक ही स्पर्श में यह विद्युत। एक क्षण में लाखों युग। इस महान प्रेम को आशर्त्रादात्मक कहें या सर्वनाशात्मक ? अहा। इसी में तो आनन्द और वेदना का केन्द्रकरण हुआ है।[1] प्रेम शब्द कितना महत्वपूर्ण और रहस्यमय है। समस्त विश्व के कार्यों का संचालन प्रेम के माध्यम से ही होता है। प्रेम ही ईश्वर है, और ईश्वर ही प्रेम।

नारद भक्ति सूत्र मे भी प्रेम की अनिर्वचनीयता का समर्थन किया गया है 'अनिर्वचनीय' प्रेमस्वरूपम्।'[2]

१. प्रेम-योग – वियोगी हरि पृ० १६,
२. नारद भक्ति सूत्र—(सूत्र ५१)

ईश्वर सत्त-चित्त और आनन्द की मूर्ति है । इस ईश्वर के एको हं बहुश्यामी की भावना से इस विश्व का निर्माण हुआ है । ईश्वर प्रेम का अथाह सागर है, प्रेममय है । प्रेम आत्मा का सौन्दर्य है और उसी के आधार पर उसका उज्वल रूप जीवन और समाज को प्रेरणा देता रहता है ।

प्रेम शब्द की परिभाषा देने का अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किया है । प्रेम शब्द की कोई विशेष परिभाषा नहीं दी जा सकती फिर भी उसके सम्बन्ध मे कुछ न कुछ लिखने का प्रयत्न हर युग में किया गया है । नारद भक्ति सूत्र में लिखा है—

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण वर्द्धमान विच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ।।[1]

अर्थात् प्रेम का रूप गुणों से रहित है, कामनाओं से रहित है, प्रतिक्षण बढ़ने वाला है, एक रस है; अत्यन्त सूक्ष्म है और केवल अनुभवगम्य है ।

प्रेम की यह चिन्तन धारा इस विश्व में अनेक रूपों में विकसित हुई है । प्रेम की भावना मानव और मानवेतर जगत मे भी परिव्याप्त है । जैसा ड्युरेन्ट का मत है प्रेम और सौन्दर्य की ये अनादि भावनाएँ मानव प्राणियों की ही सम्पत्ति नहीं, ये मानवेतर जगत में भी परिव्याप्त है । विभिन्न जीव-जगत और उससे भी आगे बढ़कर वनस्पति जगत में भी प्रेम और सौन्दर्य की चेतना आश्चर्य जगत रूपों में लक्षित होती है । प्रेम की भावना मानव मे तो स्पष्ट होती ही है, साथ ही प्रकृति के खुले प्राङ्गण में भी प्रेम की चेतना देखी जा सकती है । प्रेम के अभाव में जीवन का मूल्य ही नहीं रह जाता । कबीर ने लिखा है कि "जा घट प्रेम न संचरे सो घट जान मसान ।"

प्रेम करते समय प्रेमी अपने प्रिय से किसी प्रकार के प्राप्ति की आशा नहीं करता है । वह तो केवल चाहता है कि प्रिय जहाँ भी रहे । अपने आप को उत्सर्ग कर देना ही प्रेम की सफलता है । जयशंकर प्रसाद के मतानुसार—

मानस रे वह मिलता है कब, उसको तो देते ही हैं सब ।
आँसू के कन-कन से गिनकर, यह विश्व लिए है ऋण उधार ।।
तू क्यूं फिर उठता है पुकार–मुझको न मिला रे कभी प्यारा ।[2]

प्रेम और मानव जीवन का घनिष्ठ संबंध है । डा० राधाकृष्णन ने भी कहा है कि "प्रेम ही मानव जीवन का परमफल है ।

---

१. नारद भक्ति सूत्र (५४)

२. लहर—प्रसाद.

साहित्य मानव जीवन की व्याख्या है। मानव जीवन के विविध रूपों का चित्रण साहित्य में होता है। साहित्य में प्रेम के प्रमुख दो पक्षों का चित्रण किया जाता है। एक है उसका संयोग पक्ष जिसमें प्रेमी और प्रिय का मिलन, हास, विलास और नाना प्रकार की क्रीड़ाओं का चित्रण किया जाता है। संयोग के समय समस्त प्रकृति उन्हीं के साथ हंसती खेलती हुई दिखाई देती है। संयोग में जितना आनन्द प्राप्त होता है, वियोग में उससे कई गुणा वेदना, तड़फन, व्याकुलता और दर्द का अनुभव होता है। प्रकृति के वे सारे उपादान जो संयोग के समय आनन्द में सहायक होते हैं, वियोग में विरह को उद्दीप्त कर नायिका नायक की वेदना को तीव्र कर देते हैं। विरह के क्षणों में ही सच्चे प्रेम का परिष्कृत रूप दिखलाई पड़ता है। विरह की अग्नि में जलकर प्रेम और भी उज्वल और पवन रूप धारण करता है।

मीराँ के पदों में प्रेम की संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। मीराँ के पदों में उनके हृदय की अनुभूतियाँ सजीव हो उठी हैं। डा० उदयनारायण तिवारी ने लिखा है। ''मीराँ कृष्ण-प्रेम की वह अलौकिक मन्दाकिनी है जिसकी प्रतिभा सामान्य मानव भावों के गंदले नालों से उमड़ायी हुई किसी भक्तिमान भारिता कन्दलिता सरिता में पाना नितान्त असम्भव है।"[1]

मीराँ के पदों में संयोग वर्णन—मीराँ अपने बचपन से ही राव दूदा की निरीक्षणता में रही। राव दूदा से उन्होंने ईश्वर प्रेम का सबक सीखा। मीराँ ने बचपन से ही गिरधर नागर से प्रेम किया था। यह प्रेम केवल इस जन्म का ही नहीं, पूर्व संस्कारों का है। मीराँ अपने पदों में गिरधर का स्मरण करते हुए साथ ही उन्हें प्रीत पुरातन का भी स्मरण दिलाती है।

१. मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यां, पूरब जन्म को कोल—
२. बड़े घर तालो लागां री, पुरबला पुन्न जगावां री—
३. पूर्व जनम की प्रीति पुरानी, सो क्यूं छोड़ी जाय—
४. मीराँ हरि रे हाथ विकाणी, जणम जणम री दासी—
५. मैं तो दासी थारां जनम जनमी की ये साहब सुगणा—

इस प्रकार मीराँ अपने पदों द्वारा इस भावना को व्यक्त कर देती है कि उनका और कृष्ण का सम्बन्ध केवल इस जनम का ही नहीं है, वे जन्म-जन्मानन्तरों के बन्धन में बंधे हुए हैं।

---

१. मीराँ की भक्ति साधना—डा० उदयनारायण तिवारी मीराँ—स्मृति ग्रन्थ पृ० १४०.

पूर्व जन्म के संस्कारों के साथ हीं साथ मीराँ को इस जीवन के प्रथम चरण में अनुकूल वातावरण मिला। राव दूदा ईश्वर भक्त थे और उन्होंने मीरा के सुप्त संस्कारों को जाग्रत किया। मीराँ कृष्ण के नाम से ही प्रेम करने लगीं। परिस्थितियाँ उनके अनुकूल चलती रहीं। बचपन में ही एक साधु या संत मेड़ता आये। उनके पास कृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति थी। मीराँ को कृष्ण को वह मूर्ति बहुत अधिक पसन्द आई, और हठ द्वारा उस मूर्ति को ले लिया। अब मीराँ उसी की सेवा में रहने लगीं। कृष्ण का वह नटनागर रूप मीराँ के हृदय में छाने लगा। वह उसके रूप, रंग और सौन्दर्य पर तन्मय होने लगीं।

कल्पना की तीव्रता के कारण वही नटनागर मीराँ के मानस लोक में विविध क्रीड़ाएं करने लगे। कृष्ण के धार्मिक संकेत और मुस्काते देखकर वह रीझ उठी। मीराँ के पदों में उन विविध घटनाओं की चर्चा हुई है—

१. **दस्यां म्हारे षोषण माँ नदंलाल**
मोर मुकट मकरावत कुण्डल अरूण तिलक सोहां भाल ॥
२. **हे मन बड़ी बड़ी अंतियन धारो, सांवरी मो तन हेरत हंसि के।**
भौंह कमान बान बाके लोचन, मारन हिवरे कसिकै ॥
३. **निपट बंकट छब अटके।**
म्हारे नेणा निकट बंकट छब भटकै॥

इस प्रकार कृष्ण मीराँ के साथ मानस लोक में विविध क्रीड़ाएँ करने लगे। कृष्ण के संकेत, मुस्कान और आभूषण मीरां को बहुत प्रिय लगने लगे। परन्तु कृष्ण की निष्ठुरता मीरां को बहुत अधिक अखरी—

तनिक हरि चितवां म्हारी घोर।
हम चितवां थे चितवो णा हरि, चितवो बड़ो कठोर ॥

धीरे-धीरे कृष्ण मीराँ के साथ मिलने लगे। वे उसके हृदय में स्थान पा चुके थे और जब भी इच्छा होती मीराँ उन्हें देख लेती थी—

खेमा महांला सांवरा राज्यां, उरवां पलक णां वाताँ।
मसारां हिरदां वस्यां मुरारी, लप पल दरसन यावां ॥

मीराँ कृष्ण को अपना पति मानती है और उसी भावना से कृष्ण की उपासना भी करती है। अपने प्रिय को आँखों के सामने रखने की ही उनकी प्यास है।

मीराँ के पूर्वानुराग के सम्बन्ध में परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि उनके

पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेह सिक्त लगाव, अपूर्व उलझन एवं दृढ़ निश्चय के भाव हैं। उनके हृदय में श्री गिरिधर लाल के प्रति जो मधुर रति है वही उसके पदों में प्रदर्शित विभाव, भावादि द्वारा क्रमशः पुष्ट होकर मधुर रस का रूप ग्रहण करती हुई दीख पड़ती है। आलबंन सर्वत्र वही श्री गिरिधरलाल हैं जो गिरिधर नागर, नंद नंदन, मदनमोहन, गोविन्द, हरि, कान्हा, रमैया, जोगिया, आदि नामों द्वारा भी सम्बोधित किये गये है।

मीराँ हर क्षण कृष्ण के साथ ही रहने की कामना करती हैं। मीराँ कल्पना की तीव्रता के कारण कृष्ण के साथ विविध क्रीड़ाएँ करती हैं—

१. म्हा गिरधर रंग राती, सैयां म्हां ।
पचरंग चोला पहरयां सखी म्हां, झिरमिट खेलन जाती ॥

२. रैण दिनां वांके संग खेलूं, ज्यूं ज्यूं वाहि रिझाऊं '

३. साज सिगार बांध पद घूंघर, लोक ताज तज नाची ॥
श्याम प्रीत रो बांधि घूघर्यां मोहन म्हारो सांच्यां री ।

मीराँ ने कृष्ण के साथ अपना मानसिक वरण कर लिया था। इस प्रकार की भावना उनके पदों में दृष्टिगोचर होती है—

१. भाई म्हाणों सुपणा मां परण्यां दीनानाथ ।
छप्पण कोटां जणा पधारयां दूल्हो सिरी ब्रजनाथ ॥
सुपणा मा तोरण बांध्या री सुपणा मा गह्या हाथ ।
सुपणा मा म्हारे परण गया पायां अचल सोहाग ॥
मीराँ रो गिरिधर मिल्यारी, पूरब जणम रो भाग ।

मीराँ के इस मिलन में कुछ समय के लिये संकट उपस्थित हो गया। मीराँ की आत्मा विरह एवं वेदना के कारण तडफने लगी। धीरे-धीरे फिर आशा की किरण आने लगी। उन्हें हरि आवन की आवाज सुनाई देने लगी। वे उस मिलन की घड़ी के लिये बहुत बेचैनी से प्रतीक्षा करने लगी और शीघ्र ही मानस पटल पर वह मिलन की शुभ-बेला भी आ गई। इस भावना को मीराँ ने इन पदों में व्यक्त किया है—

१. जोसीड़ा रणे लाख बधाया आस्यां म्हारो स्याम ।
म्हारे आणंद उमंग भरयारी जीव लह्यां सुखधाम ॥

२, रे सांवलिया म्हारे आज रंगीली गणगोर छै जी ।
काली पीली बदली में बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर छै जी ॥

३. बरसां री बदरिया सावन की, सावन री मन भावन री ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, खेला मंगल गावण री ॥

४. सावण दे रह्या जोरा रे, घर आयौ जी स्याम गोरा रे।

५. रंग भरी राग भरी राग सूं भरी री ।
होली खेल्या स्याम संग रंग सूं भरी री ।।

६. सेज सावंस्या पिय घर आस्यां सखयां मंगल गास्यों ।
मीरां रे प्रभु हरि अविरणाशी, भाग भल्यां जिण पास्यो ।।

७. साजरण म्हारे घरि आया हो,
जुगां जुगाँ री जोवतां, विरहरिण पिव पाया हो ।।

मीराँ का संयोग पक्ष एक मानसिक जगत का व्यापार है। मानस पटल पर कल्पना के सहारे विभिन्न भाव चित्रों का निर्माण होता रहा है। मीराँ का प्रिय तो उसके हृदय में बसता है। अतः पाती लिखने की समस्या ही नहीं रह जाती है। मीराँ अपने प्रियतम से मानस-मंदिर में मिलती रहती थी। प्रिय के साथ तन्मय होकर मीराँ सुध बुध भूलकर गाया करती थी, नाचा करती थी और अपने मनमोहन का शृंगार किया करती थीं। यही संयोग के सुखद क्षण मीराँ के जीवन में थे।

७

मीराँ की विरह वेदना

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर नैनों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान॥

सुमित्रानन्दन पंत,

विरह की अवस्था में हृदय जनित प्रेम अपने सौन्दर्य को निखारता है। प्रेमचन्द्र जी ने लिखा है कि "सच्चा प्रेम संयोग में भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है।' वेदना की अनुभूति काव्य में अपने रूप को प्रकट करके जन-मानस को भी उसी रूप का परिचय दे देती है। प्रेम की वास्तविक अग्नि परीक्षा का समय विरह-वेला ही है। विरह की अग्नि में ही तपकर प्रेम अपने उज्वल रूप को प्रगट करता है। कहा भी है कि Love is loviest when embaled in tears विरह वेदना और दुख तो नारी जीवन के नजदीक के साथी हैं। महादेवी वर्मा ने भी लिखा है कि "जीवन विरह का जलजात, जीवन विरह जलजात"। हावेल का मत है कि 'विरह प्रेम को मधुर बना देता है।' विरह ही प्रेम की गहराई की कसौटी है और जो इस परीक्षा में खरा उतरता है वही सच्चा प्रेमी है। संयोग के समय तो वे इतने तन्मय होते हैं कि किसी अन्य वस्तु को उन्हें चिन्ता ही नहीं रहती है। वियोग के क्षणों में संयोग की स्मृतियाँ वेदना को और भी अधिक तीव्र कर देती हैं। विरह साहित्यकार की निधि है। आदि कवि बाल्मीकि के साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा भी विरह की भावना ही थी—

मा निषाद प्रतिष्ठाँ त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकबधीः काम मोहितम ः।

—बाल्मीकि रामायण,

रविन्द्र बाबू का मत है। कि "मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी निवास करती है, जो अजर और अमर है। वह मेरे हृदय में विरह के गीत अलापा करती है। वह विरहणी केवल मेरे हृदय में ही नहीं अपितु सभी हृदय और भावुक व्यक्तियों के हृदय में निवास करती है।" इस प्रकार काव्य के अधिकाश अंश की मूल प्रेरणा विरह की भावना ही रही है।

विरह में हृदय की गहन अनुभूति, दर्द, व्याकुलता और तड़फन की झाकियाँ सुन्दर रूप में मिलती हैं। साहित्य में विरह की भावना को प्राधान्य देते हुए भवभूति ने तो "करूण एको रस:" कहकर इस बात का सच्चा समर्थन किया है। विरह ही जीवन की साधना है। काव्य में वही जोवन की साधना अपने रूप को ढालती रहती है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में "यद्यपि मिलन स्पष्टतया ही सुखमय और विरह दुखमय है, तथापि मानव मन विसर्गत: मिलन की अपेक्षा विरह की ओर ही अधिक आकृष्ट होता है और मन के मर्मी कवियों ने भो इन दोनों मिलन और विरह मे विरह को ही अधिक महत्व दिया है। साहित्य दर्पण में तो यहाँ तक कहा गया है कि बिना वियोग के संयोग की पुष्टि नहीं होती है यथा—

न बिना विप्रलम्भेन, संभोग : पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रदो, भू यानुगो विवधते ।। साहित्य दर्पण,

अर्थात् बिना वियोग के संयोग शृंगार परिपुष्ट नहीं होता : कषायित: वस्त्रादि पर ही अच्छा रंग चढ़ता है। विरह के समय प्रकृति भी पात्रों के साथ ही साथ दुखी और द्रवीभूत दिखाई देती है। प्रकृति उसकी चिर सहचरी भी पात्रों के साथ चिंतित दिखाई देती है।

जो कुछ भी हम विरह के क्षणों में संजोते हैं। वही काव्य रूप में प्रगट हो जाता है। What we leam in suffering we teach in song मीराँ ने विरह के क्षणों की अनुभूति को ही काव्य रूप में प्रस्तुत कर दिया है। शैले ने भी कहा है कि Our Sweetest song are those that tell of saddest thought

विरह की यही भावना कवि व्यक्तिगत अनुभूति का सहारा पाकर तो और भी अधिक सजीव रूप में प्रस्तुत होती है। मीरां का विरह उनका अपना है। काव्य सृजन की भावना को लेकर वह नहीं लिखा गया है। उसमें हृदय की वेदना है और उसी वेदना के कारण मीरां का विरह सजीव और प्रभावशाली बन गया है—

साहित्य में विरह के प्रमुख चार भेद माने गए हैं उन्हें हम सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. पूर्वराग—

२. मान—

३. प्रवास—

४. करुण—

पूर्व राग में श्रवण दर्शन आदि से नायिका या नायक का अनुरक्त होना। उसके पश्चात् देखने, मिलने आदि की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है। मीराँ कृष्ण के साथ अपना जन्म-जन्मान्तरों का संबध मानती है। अतः अपने प्रियतम से मिलने के लिए उसके हृदय मे अभिलाषा का जगना स्वाभाविक है। वह चाहती है कि उसका 'प्रियतम उसके सामने ही रहे। मीराँ कहती है कि—

१. पिया म्हारे नैणा आगा रहज्यो जी।
नैणाँ आगाँ रहज्यो म्हाणे भूल णो जाज्यो जी॥

२. बस्या म्हारे णेणन मां नन्दलाल।

मीराँ कृष्ण को प्रतिक्षण अपने आँखों के सामने ही रखना चाहती हैं। इस अभिलाषा की संतुष्टि न होने से मीराँ हृदय में विरह-वेदना तीव्र हो उठती है। पूर्वानुराग के प्रथम चरण में ही विरह का आभास दृष्टिगोचर होने लगता है। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "उनके पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेहसिक्त लगाव, अपूर्व उलझन एवं दृढ़ निश्चय के भाव हैं। उनके हृदय में श्री गिरिधर लाल के प्रति जो मधुर रति है वही, उनके पदों मे प्रदर्शित विभाव, अनुभावादि द्वारा क्रमशः परिपुष्ट होकर क्रमशः मधुर रस का रूप ग्रहण करती हुई दिखाई पड़ती है"।[1]

मान जनित विरह की अवस्था में जब नायक-नायिका शारीरिक रूप मे तो एक दूसरे के समीप ही होते हैं पर रूठ जाने के कारण मानसिक दृष्टि से एक दूसरे से दूर होते है। मीराँ के काव्य मे इस प्रकार का विरह नहीं मिलता है।

विरह का सर्वोत्तम प्रकार प्रवास माना गया है। इस अवस्था में दोनों में से एक बाहर चला जाता है और दूसरा उसके विरह में व्याकुल हो उठता है। साहित्य में विरह के इसी रूप का सबसे अधिक चित्रण हुआ है। इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विरह को प्रस्तुत किया जाता है। मीराँ के पदों में भी दोनों प्रकार की अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। शारीरिक अवस्था के सम्बन्ध में मीराँ लिखती है कि "पानां ज्यूं पीली पड़ी रे लोग कह्यां पिण्डवाय।" साथ ही मानसिक चिन्तन की वेदना कह उठती है "प्रभुजी काहां गया नेहड़ा लगाय" तो उस विरह की वेदना पाठक को भी द्रवीभूत कर देती है।

---

१. मीराँबाई की पदावली – परशुराम चतुर्वेदी पृ० ४६.

विरह का चौथा प्रकार करुण माना जाता है। यह वह अवस्था होती है जब दोनों में से एक की मृत्यु हो जाती है। मीराँ के प्रियतम गिरधर तो अविनासी हैं अतः उनके मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः मीराँ के काव्य में करुण का रूप दिखाई नहीं देता है।

कामदशाएँ :—

विरह वर्णन के साथ ही साथ काम की दस दशाओं का वर्णन भी साहित्य में किया गया है। हम यहां पर यह देखेंगे कि मीरां के पदों में उनका प्रयोग किस सीमा तक हुआ है।

१. पिया म्हारे नैणां आगां रहज्यो जी—

२. बसो मेरे नैनन में नन्दलाल—

२. चिन्ता—

१. जाण्यां णा प्रभु मिलण बिध क्यों होय—

२. जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट—

३. स्मृति—

१. हेली म्हांसूं हरि बिनि रहयो न जाय—

२. आली री म्हारे णेणां बाण पड़ी—

४. गुण-कथन—

१. म्हा मोहण रा रूप लुभाणी—

२. भाई म्हां गोविन्द, गुण गास्यां—

५. उद्वेग—

१. होली पिया बिन लागा री खारी—

२. फूलन सेज सूल होई लागी, जागत रैण विहावे हो—

६. प्रलाप—

१. हरि बिन क्यूं जिवां री माय—

७. उन्माद—

१. हेरी यहा दरदे दिवाणी म्हांरा दरद न जाण्याँ कोय—

८. व्याधि—

३. दुखिया णा सुखिया करो, म्हांणे दरसण दिज्यो जी—

९. जड़ता—

१. खाण पाण म्हारे नेक न पावां, नैण खुला कपाट—

१०. मरण—

१. जल बल भई भस्म की ढ़ेरी, अपने अंग रमा जा रे जोगी—

मीराँ में ये दशाएँ बिना किसी प्रयत्न लाघव के स्वाभाविक रूप में आ गई हैं। मरण की झलक मात्र मिलती है जिसमें वे अपने प्रियतम के लिये अपने आस्तित्व को भी मिटा देने के लिये तत्पर हैं। मीराँ का विरह साहित्यिक दृष्टि को ही लेना नहीं लिखा गया है उसमें हृदय का सहज और स्वाभाविक रूप प्रगट होता है। मीराँ का विरह साहित्य की अमूल्य नीधि है। बांके बिहारी के शब्दों में

"The wild tale of pathos shall ever remain writ large on the temple of love. She lived on tears and slept on tears ; This shall be the language of love in which mira will go down to posterity !"[1]

आंसू ही मीराँ के जीवन की अमूल्य नीधि थी और वे ही उसकी मूक वेदना के प्रतीक भी थे। मीराँ का विरह अनुभूति जन्य है अतः उसमें गहराई और अनुभूति के दर्शन होते हैं। डा० श्री कृष्णलाल ने लिखा है कि "मीराँ के विरह निवेदन मे जिस पीड़ा व दर्द का वर्णन है वह अत्यन्त गम्भीर और अनिवर्चनीय है। मीराँ के बीसियों पदों में यह घटना उमड़ी सी पड़ती है जैसे महासागर के अन्तर का मंथन उसकी उत्ताल तरंगों में उमड़ पड़ता है"।[2] मीराँ नारी है और वेदना नारी की सहेली है। मीराँ की वेदना तीव्र होती जाती है और उसकी तड़फन काव्य के रूप में उमड़ कर पाठकों को भी द्रवीभूत कर देती है। मीराँ के विरह में वेदना, तड़फन और व्याकुलता के दर्शन होते हैं। महादेवी के शब्दों में "मीराँ के हृदय मे बैठी हुई नारी और विरहणी के लिये भावातिरेक सहज प्राप्य था, उसके बाह्य राज रानी पन और आन्तरिक साधना में संयम के लिये पर्याप्त अवकास था। इसके अतिरिक्त वेदना की अनुभूति थी। अतः उसका 'हेली मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय' सुनकर यदि हमारे हृदय का तार तार उसी ध्वनि को दोहराने लगता है, रोम-रोम उसकी वेदना का स्पर्श करने कर लेता है तो कोई आश्चर्य नहीं।"

मीराँ का अपने प्रिय नटनागर का विरह ही उनके काव्य का सौन्दर्य है। कबीर और जायसी के समान प्रेम की तीव्रता-घनानन्द के समान छटपटाहट और

---

१. Bhakta-Mira : Bankey bahari P. 57.

२. मीराँबाई—डा० श्री कृष्णलाल, पृष्ठ १३५,

उनसे भी बढ़कर प्रेम की गहन अनुभूति, कृष्ण के प्रति अनन्य तन्मयता को यदि एक जगह देखना है तो वे हैं मीराँ के पद ।

मीराँ के अधिकांश पद विरह की भावनाओं के ही प्रतीक हैं। मीराँ के पदों में हृदय के सच्चे उद्गार हैं। श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल के शब्दों "मीराँ की वेदना में वह विलास की चांदनी नहीं है जो नशे मे इधर-उधर उड़ा करती है। उसका प्रेम दिवानी मुख होता हुआ भी मानवी पिपासा, उत्कण्ठा और हार्दिकता से परिपूर्ण है। उसमें मिलन की उमंग भरी प्यास है। मीराँ की वेदना काँटे के समान दिल में चुभती है—जुही की सुगंध के समान मस्त करती है और आलिंगन के समान विस्मृति कारी आनन्द से मन को पूर्ण कर देती है। उस वेदना में एक समूचे जीवन की ही नहीं जन्म-जन्मों की युगों-युगों की अन्तः प्रेरणा और प्राण पिपासा है।"[1]

प्रेम-पथ की ओर बढना साधारण व्यक्ति के लिये संभव नहीं है। प्रेम का मार्ग काटों से भरा मार्ग है, जहाँ पर प्रेमी को प्रतिक्षण वेदना, आह मिलती है। जो जीवन की समस्त कामनाएँ त्याग कर प्रेम करे वही प्रेम के मार्ग पर आगे बढ़ने का अधिकारी हो सकता है। इस सम्बन्ध में कबीर ने लिखा है कि—

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुँहि धरे, सो पेढ़े घर माहि ॥

मीराँ भी प्रेम मार्ग की बाधाओं का वर्णन करती हुई लिखती है कि—

जे हूँ ऐसा जानती रे वाला प्रीत कियां दुख होय।
नगर ढ़िढ़ोरा फेरती रे प्रीत न करियो कोय ॥

क्योंकि प्रेम का मार्ग बहुत कठिन है :—

प्रीत करे तो बावरो रे, करि तोड़े तो कुर।
प्रीत निमावण दल थभंण, ते कोई विरला सूर ॥

मीराँ यह सब कुछ जानते हुए भी कि प्रेम का मार्ग बाधाओं से भरा हुआ है, वह इसी मार्ग पर जीवन भर आगे बढ़ती रही। उसके हृदय में केवल मात्र प्रिय मिलन की कामना है और उसी आशा के साथ वह जीवन भर इन्तजार करती रही।

मीराँ के मानस पटल पर प्रिय का मिलन होता रहा, परन्तु साक्षात् रूप से अपने प्रिय को पास में ही रखने की भावना तीव्र होती गई। कृष्ण का वियोग

---

१. मीरा की वेदना—अंचल 'मीरा—स्मृति ग्रन्थ' पृ० १३३

वे सहन नहीं कर सकती, कृष्ण के मिलन के बिना तो यह जीवन उन्हें भार-सा लगता है—

१. हेली म्हांसू हरि बिन रह्यो न जाय ।

२. जाण्यां णा प्रभु मिलण विध क्यां होय ॥
आया म्हारे आंगणा फिर गया में जाण्या सोय ॥
जोवतां मग रेण वीतां दिवस वीतां जोय ॥
हरि पधारां आंगणां गया में अभागण सोय ।
विरह व्याकुल अनल अन्तर कलणां पड़ता दोय ॥
दासी मीरां लाल गिरधर मिल णां बिछड़वा कोय ।

३. अखयां तरशां दरसण प्यासी ।
मग जोवां दिण वीतां सजनी, येण पड़्या दुखरासी ॥

उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रिय आते हैं और मैं अभागिन उन्हें देख नहीं पाती । इसलिए वे कृष्ण से प्रार्थना करती हैं कि आप कृपा करके मेरे नैनों के आगे ही रहें—

१. पिया म्हारे नैणा आगां रहज्यो जी ।
नैणा आगां रहज्यो, म्हाणे भूल णो जाज्यो जी ॥

२. छोड़ मत जाज्यो जी महाराज ।
म्हा अबला बल म्हारो गिरधर, थें म्हारो सरताज ॥

३. ऐसी लगन लगाई कहां तू जासी ।
तुम देखे बिन कलि न परत है, तलफि तलफि जिव जासी ॥

मीरां नटनागर से प्रार्थना करती ही रहीं और उन्हें किसी भी प्रकार अपने पास रखना चाहती हैं । वह तो अपने प्रिय की चेरी बनकर भी उसी की सेवा करना चाहती हैं—

१. जोगी मत जा मत जा मत जा, पांइ परूं में तेरी चेरी हौं ।

२. म्हाणे चाकर राखोजी, गिरधारी लाला चाकर राखाजी ॥
चाकर रहस्यूं बाग लगास्यूं, नित उठ दरसण पास्यूं ॥

३. मैं तो दासी थारां जनम जनम की, थे साहब सुगणा—

परन्तु मीरां के कृष्ण मिलन की वेला नहीं आयी, वह मीरां अपने प्रिय की राह में आंखें बिछाये हुए बैठे रही । प्रिय न आये, वह प्रिय को प्रसन्न करने के लिये विविध भेष, उपासनाएं और विधिएं करने लगी । वियोग में अपने

प्रियतम को उपालंभ देती हुई मीरां उनकी निष्ठुरता और अपनी दृढ़ आस्था की चर्चा करती है—

१. **देखां माई हरि काठकियाँ।**
आवण कह गयां अजां ण आया, कर म्हाणें कोल गयां ।।

२. **प्रभुजी थे कहां गया नेहड़ा लगाय—**

वे प्रिय से उनकी इस निष्ठुरता का कारण पूंछती हैं और कहती है कि यदि मेरी कोई भूल हो तो मुझे स्पष्ट कहें—

कछुक औगुण हम में काढ़ो, में भी कान सुणां।

परन्तु अनुनय विनय के पश्चात् भी मीराँ के प्रभु न मिले तो मीराँ की विरह वेदना बढ़ने लगी। आत्मा दर्द, तड़फन और व्याकुलता से प्रभु की राह देखने लगी। यह दर्द जिसे होता है वही समझ सकता है।

हेरी म्हा दरदे दिवाणी म्हांरा दरद जाण्यां कोय।
घायल की गति घायल जाण्यां, हिवणो अगण संजोय ।।

यह दर्द हृदय में उठा है, वह बढ़ता ही जा रहा है। जीवन की समस्त वस्तुएँ कड़वी-सी लगती हैं। आँखों में नीद नहीं आती। केवल मात्र प्रिय का स्मरण ही शेष रह गया है। मीराँ ने तो अपने प्रभु के समान सौन्दर्यवान अन्य प्राणी देखा ही नहीं है, वे कहती हैं कि "ऐसी सूरत या जग मांही फेरि न देखी सोई और उस सूरत को ढूंढने के लिये वे इधर-उधर भटकना भी शुरू करती हैं।

मीरां प्रभु के ढूंढने के लिये सभी मार्गों को अपना लेती हैं, जिससे संभवतः उनके प्रियतम मिल सकें। वे कहती हैं कि "जिह जिहि विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजे- हो।" प्रिय को ढूंढने के मार्ग में किसी भी प्रकार की वाधा अगर आती है, तो मीराँ सहर्ष उस संघर्य का स्वागत करने के लिये प्रस्तुत है। प्रियतम को पाने के लिए वे शहर, शहर भ्रमण करने के लिए भी तैयार हैं—

१. **दरसण कारण भई बावरी, विरह विथा तन घेरी।**
तेरे कारण जोगण हूँगी, दूंगी नग्र बिच फेरी ।।

मीराँ को कृष्ण नहीं मिल पाये। इस जीवन के प्रति उनका मोह नहीं रहा। वे किसी भी प्रकार अपने प्रियतम से मिलने के लिये उत्सुक हैं। वे अपने प्राणों तक को उल्हाना देती हैं कि तुम प्रियतम के बिना किस प्रकार इस काया की सीमा में रह पाये हो। मीराँ के नटनागर विविध रूपों, भेषों और लीलाओं के धनी हैं। मीराँ को उनका जोगी योगी रूप अधिक पसंद आया और वे उस योगी से प्रार्थना करने लगी कि किसी भी प्रकार नगर की फेरी देते हुए भी तुम एक बार मुझसे मिल

लो। सभी प्रकार प्रार्थना बेकार गई देखकर मीराँ ने प्रियतम को पत्र लिखने का संकल्प किया।

१. **पतियां मैं कैसे लिखू लिख्यो री न जाय।**
कलम धरत मेरो कर कंपत है, नैन रहे झड़लाय ॥

परन्तु पत्र लिखने की शक्ति तो रह ही कहाँ गई थी। साथ ही वह सोचती थी कि मैं पत्र लिखूं भी तो किसे ? क्योंकि मेरे प्रिय तो मेरे हृदय में ही निवास करते हैं। प्रिय वियोग में मीराँ का शरीर क्षीण होता जा रहा है। शरीर में परिवर्तन आ रहा है जिसे मीराँ भी स्पष्ट रूप से अनुभव कर रही है--

१. पाना ज्यूं पीली पडी रे लोक कहस्यां पिडवाय—
२. इक विरहणी हम ऐसी देखी, अंसुवन की माला पोवे—
३. पात ज्यूं पीरी परी, अरू विपत तन छाई—

मीराँ ने इस प्रकार का वर्णन बहुत ही कम किया है। मीराँ तो अपने आपको भी भूलकर प्रिय से मिल जाना चाहती है। एक तो प्रिय नहीं आये उधर प्रकृति की विविधता ने मीरां की वेदना को और भी तीव्र कर दिया। विरह में प्रकृति के समस्त उपाय मीराँ की स्मृतियों को उभारते हैं। मीराँ ने प्रकृति का सुन्दर रूप से चित्रण किया है। मीरां का प्रकृति का हर रूप मिलन वेला की याद दिला देता है—

१. **आंबा की डाली कोइल एक बोले, मेरो मरण अरू जग केरी हाँसी।**
२. **पपइया म्हारो कबरो बैर चितारयां।**
म्हां सावूं छी अपणे भवण मां पियु पियु करतां पुकारयां ॥
दाध्यां ऊपर लुण लगायां, हिवड़ी करवत सारयाँ।
३. **मतवारो बादर आए रे हरि को सने सो कबहुँ न लाये रे।**
४. **बादल देख झरी स्याम में बादल देखाँ झरी।**
५. **पपइया रे पिव की वाणि न बोल।**
सुणि पावेली विरहणी रे, थारो रालेली पांख मरोड़ ॥

प्रकृति की छटा मीराँ को प्रिय का स्मरण दिला देती है। मीराँ के हृदय में प्रियतम से मिलने की आकाक्षां और न मिलने का क्षोभ एक विशेष मानसिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है और मीराँ को पपइया का स्वर भी अप्रिय सा लगता है और वह सोचती हैं कि मेरे और प्रिय के बीच यह अन्य कौन-सी वस्तु आ रही है—

१. चाँच कटाऊं पपइया रे, उपसि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै स कूण ।।

मीराँ उसे कहती है कि तूं मेरे और प्रिय के बीच मध्यस्थ बनकर कार्य में सफल हो जाता है तो मैं तुम्हारी सभी इच्छाओं की पूर्ति करने को प्रस्तुत हूँ। प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओं का सुन्दर चित्रण मीरा के पदो मे मिलता है। डा० रघुवंश के शब्दो में प्रकृति के उद्दीपन रूप को लेकर समस्त उन्मुक्त कवियों में समान भावना है। परन्तु मीरां के पद शैली में गीति-भावना के प्रकृति से उद्दीपन की प्रेरणा स्वाभाविक ही है। प्रकृति की सौन्दर्य राशि मीराँ की भावनाओं को उद्दीप्त करती ही थी साथ ही जीवन में कुछ महत्व पूर्ण त्योहार भी आगए। होली का त्योहार तो विरहणि के लिये बहुत ही कष्टमय रूप से आया। मीरां को भी होली के समय प्रियतम का न मिलना बहुत अधिक अखरा—

१. होली पिया बिन लागाँ री खारी।
सूनो गांव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी ।।
सूनी विरहन पिब बिन डोलें, तज गया पीव पियारी।
विरहा दुख भारी।

२. किण संग खेलूं होली, पिया तज गये हैं अकेली।

३. होली पिया बिन म्हाणं णाँ भावाँ पर आँगना न सुहावाँ ।।
दीपाँ चौक पुरावाँ हेली पिया परदेस सजावाँ।
सूनी सेजाँ व्याल बुझायाँ जागा रेण बितावाँ ।।

मीराँ ने केवल एक पद में बारहमासा की परम्परा का पालन किया है। मीराँ को चारों तरफ का वातावरण संदेह युक्त सा लगने लगा। मीराँ के हृदय की वेदना किसी भी प्रकार कम न हो सकी जितने ही आत्मा को संतुष्ट करने के प्रयत्न किये विरह की भावना उतनी ही बलवती होती गई। मीराँ कृष्ण के अभाव में जीवन का कोई मूल्य ही नहीं मानती जैसे जल बिण कंवल चन्द विण रजनी ठीक उसी प्रकार तुम्हारे बिना इस जीवन का भी कुछ महत्त्व नहीं है। प्रियतम के एक क्षण निकालना भी एक बड़ी भारी समस्या है। मीरां कहती हैं कि—

१. पल पल भीतर पंथ निहारूं, दरसण म्हांने दीजो जो।

२. तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जोऊं वाट तुम्हारी ।
कूण सखी सूं तुम रंग राते, हम सूं अधिक पियारी।

३. म्हारों जणम जणम रों साथी, थांने णा विसरयाँ दिन राती।।

४. घायल री घूमा फिरा म्हारो दरद गा जाण्यां कोय—

मीराँ बहुत अधिक सहन कर चुकी, अब उसके पास केवल मात्र एक ही मार्ग रह गया कि वह प्रियतम को इधर उधर ढूंढ़ती घूमे । मीराँ प्रियतम के कारण जोगण होकर नगर के बीच में फेरी देना का इरादा करती है शहर, वन-बन सब जगह प्रियतम को खोजा परन्तु वह कहीं नहीं मिला । मीराँ कहती हैं कि दरद दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस परन्तु प्रियतम का कोई पता नही मिला । उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ है कि जोगी नगर में आकर कहीं रम गया है। साथ साथ ही हृदय मे आशंका उठती है कि "के तो जोगी जग में नहीं कर विसरी बोई" और आन्तरिक विरह बहुत ही तीव्र हो उठता है । उनको ऐसा प्रतीत होता है कि उनका प्रिय पास आकर भी दूर होता जा रहा है । वे उसे प्रेम मार्ग की विधि पूंछती है और कहती है कि तुम जाने से पहले—

जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा ।
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाजा ।।

वे अपने और प्रियतम के बीच की दूरी को सदा के लिये मिटा देना चाहती हैं और अन्त मे—

जन मीरां कूं गिरधर मिलिया, दुखण मेटण सुख भेरी ।
रूम रूम सात भई उर में, मिटि गई फेरा फेरी ।।

डा० श्री कृष्णलाल के शब्दों मे "प्रेम की चरम परिणति विरह में होती है और विरह की चरम परिणति इस चिरंतन विरह साधना मे । मीराँ इसी चिरंतन विरह-साधना में महान् है । उनकी इस प्रेम साधना की अथवा विरह साधना की तुलना केवल राधा की विरह-साधना से की जा सकती है ।"[१] मीराँ को नटनागार का रूप और नाम इतना प्रिय था कि वे उसे प्रतिक्षण अपने आँखों के सामने रखना चाहती थी । मीराँ अपने आप को प्रिय में ही विलीन कर लेना चाहती है । शंभु-प्रसाद बहुगुणा के शब्दों मे "होली के रंगो की भाँति वह घुल जाना चाहती हैं वंशी के स्वरो की भाँति गूंजना चाहती है । रंगो और स्वरों से एक हो जाने की चाह योग की क्रियाओं, संतो के समागम, वैष्णवों के नृत्य संगीत अर्चना बन्दना और निरंजनियों की दशधा तथा नाथों की नाद ज्योति साधना सब के बीच होती हुई असीम सौन्दर्य तक पहुँचती है ।"[२]

---

१. मीराँबाई — डा० श्री कृष्णलाल पृ० १५२.

२. जनम जोगिनी मीराँ—प्रो० शम्भु प्रसाद बहुगुणा मीराँ स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ २६.

मीरॉं के प्रिय विरह की भावना अर्न्तमुखी थी । मीरॉं प्रियतम को प्राप्त करने के लिये कठिन से कठिन मार्ग पर चलने को प्रस्तुत हैं। मीरॉं के मानस मन्दिर में ही प्रिय ने अपना स्थान बना लिया है। वे उस प्रिय के मिलन के लिये विविध विधायें करती रहती हैं सभी भेष उपासनाएं प्रिय तक पहुँचने के सोपान हैं। मीरॉं की प्रेम-साधना ही उसके जीवन का मूल उद्देश्य था।

मीरॉं की प्रेम साधना हर युग में पढ़ने वाले पाठक को आत्म विभोर कर देता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने ठीक हो लिखा है कि उनके भजनो में इतनी प्रबलता से प्रेमधारा बहती है कि उससे आद्र हुए बिना कोई सहृदय नहीं रह सकता।[1] साथ ही डा० श्री कृष्णलाल ने तो मीरॉं के विरह को साहित्य में सर्वोत्कृष्ट ही बताया है—"हिन्दी के कतिपय समालोचकों ने जायसी के विरह वर्णन को हिन्दी काव्य में स्वर्वोत्कृष्ट ठहराया है, परन्तु जायसी का विरह निवेदन मीरॉं के इन गम्भीर पदों के सामने केवल उद्दात्मक और अतिश्योक्ति पूर्ण उक्तियां ही जान पड़ती हैं। दादू का विरह वर्णन अवश्य उत्कृष्ट बन पडा है। परन्तु जो व्यापकता और गम्भीरता मीरॉं के पदों में है उसका लेश भी दादू के दोहों और पदों में नहीं मिलता है।"[2]

---

१. हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—हरिऔध पृ० ४२.

२. मीरॉंबाई—डा० श्री कृष्णलाल पृ० १३६.

———

८

मीराँ की भक्ति-भावना

'भजसेवायाम्' धातु से 'स्त्रियांक्तिन्'[1] इस पाणिनी सूत्र के अनसार 'क्तिन्' प्रत्यय लगने पर भक्ति शब्द बनता है। हिन्दी साहित्य कोश के मतानुसार भक्ति शब्द की उत्पति 'भज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ भजना है।[2] 'भजन' भक्तिः, भज्यते अतया इति भक्तिः, भजन्ति अनया इति भक्ति—इत्यादि भक्ति शब्द की व्युत्पतियाँ की जा सकती हैं।[3] ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम एवं श्रद्धा का नाम ही भक्ति है। भक्ति के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक प्रकार से अपने अनुभवों को व्यक्त किया है। नारद भक्ति सूत्र में लिखा है कि—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥

अमृतस्धरूपाच ॥

यल्लव्धवा पुमान सिद्धो भवति, अमृतोभवति तृप्तीभवति ॥[4]

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है। भगवान् में अनन्य प्रेम होने के कारण ही वह अमृत स्वरूपा भी है। इस प्रकार की भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, और वह तृप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार प्रेम की अनन्यता की ओर संकेत करते हुए शाण्डलिय सूत्र में लिखा है कि "सा परानुरक्तिरीश्वरे अर्थात् ईश्वर के प्रति परमानुराग को ही भक्ति कहते है।[5]

---

१. प्रा० सू० ३।३।६४,
२. हिन्दी साहित्य—कोश पृ० ५२६,
३. कल्याण (भक्ति-अंक) पृ० ४१
४. नारद भक्ति सूत्र २:३:४.
५. शाण्डल्यि भक्ति सूत्र : १.

भक्ति की उत्तमता को दृष्टि मे रखते हुए रूपगोस्वामी ने लिखा है कि—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्मघनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्ति रुत्तमा ।।[1]

अर्थात् आध्यात्मज्ञान की प्राप्ती की अभिलाषा न करते हुए, कर्म अथवा वैराग्य का भी मोह न रखते हुए, और अपने भी किसी स्वार्थ की भावना को स्थान न देते हुए, केवल श्रीकृष्ण की संतुष्टि के लिए उनका प्रेम भाव से चिंतन करना ही उत्तम भक्ति है । इन सभी परिभाषाओं के मूल मे एक तत्व मिलता है—ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा इस बात को सभी भक्तों एवं सम्प्रदायो ने स्वीकार किया है ।

भक्ति की यह भावना मानव हृदय में उसके प्रारम्भ काल से ही रही है । भारतके प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं । वेदो मे भी हमे भक्ति के अनेक महत्वपूर्ण तत्व मिलते हैं । भक्ति संबंधी यह चिंतन धारा हर युग में किसी न किसी तरह अपने को व्यक्त करती रहती है । भक्ति मार्ग का प्रमुख सम्प्रदाय भागवत है । भक्ति धारा के विकास के साथ भागवत धर्म का बहुत गहरा संबंध रहा है । अपने विकास की मंजिल की ओर बढ़ती हुई भक्ति उस धारा ने अनेक रूप धारण किये जिनमें विशेष कर ब्रह्म के स्वरूप, उसका जीव से सम्बन्ध और उपासना पद्धति के आधार पर अनेक दार्शनिक बिचार धाराएँ हमारे सामने आई है । और लगातार उस अनेक तत्व को मिटाकर एकत्व की स्थापना का प्रयत्न किया जाता रहा । सभी का लक्ष्य तो ईश्वर ही था । पर उसकी प्राप्ति के माध्यम में अनेक रूपता आ गई । इसी अनेक रूपता में आगे चलकर के अनेक सम्प्रदायों और ग्रंथों को जन्म दिया । हिन्दी साहित्य के मध्य काल में यह प्रवृति बहुत ही बढ़ गई और उस समय अनेक पंथ बने ।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल—इस युग के साहित्य में केवल मात्र भक्ति का ही स्वर नहीं, युग चेतना का स्वर भी हमें सुनाई देता है । काव्य का प्रमुख विषय इस युग में भक्ति ही रहा और अधिकांशतः भक्ति साहित्य ही लिखा गया । इस युग में विविध रूप सामने आये । हम उसे प्रमुख रूप से दो भागों में बांट सकते हैं—सगुण भक्ति शाखा और निर्गुण भक्ति शाखा । आगे चलकर सगुण भक्ति शाखा के दो और भाग हो गये कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा । निर्गुण भक्ति के आगे चलकर दो भेद हुए ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति युग को ये चार विशिष्ट चिन्तन धाराएँ थीं । इन्ही भक्ति

---

१. भक्ति रसामृत सिंधु : रूपगोस्वामी.

धाराओं का सहारा पाकर आगे अनेक सम्प्रदाय और अनेक पंथ बन गये ऐसा लगता है कि इस युग में पंथ निर्माण की एक बाढ़ सी आ गई थी।

इस युग में अनेक भक्त कवि हुए जिनमें कबीर, रैदास, दादू, सुन्दरदास, कुतबन, मंझन, जायसी, तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास और परमानन्ददास प्रमुख है। ये सभी मूलतः पहले भक्त थे और कवि बाद में सभी भक्त कवियों का वर्ण्य विषय एक ही था भक्ति, पर उसे जिस विविधता के साथ उन्होने प्रस्तुत किया वह बेजोड़ है।

इस युग को साहित्य की चिन्तन धारा को विशेष सीमा में बांधना उसके साथ अन्याय करना होगा। युग की प्रचलित सभी विचारधाराओं ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। संतो ने तो विशेषकर सभी दृष्टि से समन्वयवाद को अपनाया। भगवान के स्वरूप संबंधी विचारधारा में भी सामाजंस्य स्थापित करने की अद्भुत क्षमता थी। इस युग के संतों में मीराँ के पदो को देखने पर भी हमें ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों के दर्शन होते हैं। यह युग भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति की दृष्टि से स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

मीराँ के पदों में निर्गुण भक्ति—मीरां के कुछ पदों में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन आता है। मीराँ का वह बलवा अबिनासी है जिसके साथ मीराँ का सच्चा प्रेम है।[१] पंचरंग चोला पहन कर अविनासी ब्रह्म के साथ झिरमिट खेलना और उसी के रंग में रंग जाना मीराँ को प्रिय लगता है।[२] उस प्रियतम से मिलने के लिए मीराँ 'अगम देश' की जहाँ काल तक का गम नहीं है।[3]

---

१. अबिनासी सुं बालवां हे, जिनसूं सांची प्रीति।
मीराँ कूं प्रभु मिल्या हे, एही भगति की रीति॥

मीराँबाई की पदा० पृ० ११०.

२. म्हां गिरधर रंग राती, सैयां म्हां ॥टेक॥
पंचरंग चोला पहरया सखी म्हां झिरमिट खेलण जाती।
वा झरमिट मां मिल्यो सांवरे, देख्या तण मण राती॥

वही : पृ० १०८.

३. चालों अगम वा देस, काल देख्यां डरां।
भरा प्रेम रा होज, हंस केल्या करां।
साधा संत रो संग, ग्यारण जुगतां करां।
धरा सांवरो ध्यान, चित उजलो करां॥
सील घूंघरा बाँध तोस निरता करां।
साजां सोल सिंगार, सोणारो राखडां॥
सावलिया सूं प्रीत, औरां रूं आखडां।

वही : पृ० १५८.

वे त्रिकुटी महल में बने हुए झरोखे से झांखी लगाने को चर्चा करती हैं। वह फिर सुभ महल में सुरत जमाकर सुख की सेज बिछाती हैं, परमानन्द का अनुभव करती हैं। यह सब उस साहिब को पा लेने के लिये ही है।[१] सुख की सेज के साथ ही सेज सुषमणा[२] और गगन मंडल पे सेज का वर्णन भी उन्होंने अपने पदों में किया है।[3] ज्ञान रूपी दीपक का सहारा लेकर वे अगम अटारी पर भी चढ़ना चाहती हैं।[४] पर मीरां के प्रियतम तक पहुँचने का रास्ता बहुत ही संकट मय और रपटीला है। वह प्रयत्न करने पर झीणें मार्ग पर चढ़ नहीं पाती हैं। मार्ग में पहरा भी लगा हुआ है। और बटमार भी मंडरा रहे हैं, ऐसी स्थिति में मीराँ अपने प्रियतम से मिले भी तो कैसे।[५]

मीरां का वह प्रियतम जोगी बड़ा ही निष्ठुर है। मीरां उसका इन्तजार करती है। और वह नगर में आकर भी रम गया है।[६] इसलिये मीराँ कहती है कि

---

१. नैनन बनज बसाउरी; जो मैं साहिब पाउं ।। टेक ।।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊं री ।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहां से झांखी लगाऊं री ।।
सुन्न महल में सुरत जगाऊं, सुख की सेज बिछाऊं री ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊं, री ।।
मीराँबाई की पदावली (तृतीय संस्करण) सं० २००० पृ० ५.

२. सेज सुषमरा मीराँ सोवै, सुभ है आज घड़ी । वही : पृ० १४.

३. गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होई ।
वही : पृ० २७.

४. दीपक जोउं ग्यान का चढू अगम अटारी हो । वही : पृ० ५५.

५. गली तो चारों बन्द हुई मैं हरि से मिलूं कैसे जाइ ।
ऊंची नीची राह खटीली पांव नही ठहराइ ।।
सोच-सोच पग धरूं जतन से बार-बार डिग जाय ।
ऊंचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ़या न जाय ।।
पिया दूर पंथ म्हांरो, झीणों, सुरत झकोला खाय ।
कोस कोस पर पहरा बैठया, पॅड पेड बटमार ।।
हे विधिना कैसी रच दीनी दूर बस्यो म्हांरी गाम ।। वही पद सं० १९३

६. जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट ।। टेक ।।
पांव न चालै पंथ दूहेलो, आड़ा औघड़ घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ ।
मीराँ पदा० नवम् सं० पृ० ११५.

जोगिया से प्रीत करने से ही दुखः होता है[1] इस दुख का मूल कारण ही प्रीति करना है।[2] वह जोगी आसन माड़ कर अडिग होकर बैठा था एक दिन मंझधार में ही छोड़कर चला गया।[3] अतः मीराँ कहती है कि अब जोगी की प्रीति पर भरोसा कैसे करे।[4] वह धूतारा जोगी से भी करबद्ध प्रार्थना करती है।[5] वह रमईया को अपने प्रेम की स्थिति स्पष्ट कर देती है।[6] उस जोगी के बीच में कुन्डल पहने हुए हैं और गले के बीच सेलीं धारण की हुई है उसके शरीर पर भस्म लगाई हुई है।[7] वह जोगी को अपने देश आने का निमन्त्रण देती है।[8] वह उनसे आदेश की भी आशा करती है।[9] और अन्त मे उस जोगी को कहती है कि यदि तुम्हें जाना ही है तो अपने हाथों से चिता बनाकर मुझे जलाकर चले जाओ।[10] ब्रह्म के इस प्रकार के स्वरूप के साथ ही मीराँ के पदों में संतों की तरह ही गुरू की महत्ता की

---

१. जोगिया से प्रीत कियां दुख होइ ॥ वही : पृ० ११७

२. जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल ॥ वही पृ० ११७

३. कोइ दिन याद करोगे रमता राम अतीत ।
आसण माड़ अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत ॥
मैं तो जाणू संग चलेगा, छोड़ि गया अध बीच ।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत ॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ।
वही पृष्ठ ११८.

४. जावादे जावे री जोगी किसका मीत । वही पृ० ११८.

५. धूतारा जोगी एकरसूं हंसि बोल । वही पृ० ११६.

६. रमईया मेरे तोही सूं लागी नेह । वही पृ० ११६.

७. कानां विच कुन्डल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाय ।
तुम देख्या बिन कल न पड़त है, ग्रिह अगणो न सुहाय ॥
वही पृष्ठ १३१.

८. जोगिया जी आज्यो जी इण देस । वही पृ० १३६.

९. जोगिया ने कहज्यो जी आदेस । वही पृ० १३६.

१०. जोगी मत जा मत जा मत जा, पांइ परूं मैं तेरी चेरी हों ।
प्रेम भगति को पैंडो ही न्यारा, हमकूं गेल बताजा रे ॥
अगर चन्दण की चिता बणाऊं, अपने हाथ जलाजा ।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा ॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत में जोत मिलाजा ।
वही पृ० ११६.

भी चर्चा मिलती है ।[१] इस प्रकार संतों की परिभाषिक शब्दावली मिलने का कारण ही कुछ लोग उन्हें सत मत के अन्तगत स्थान देने का प्रयत्न करते हैं। और रैदास को उनके प्रत्यक्ष गुरू की भाँति सिद्ध करने का प्रयत्न किया ।"[२] मीराँ के पदों को अच्छी तरह अध्ययन किया जाय तो हम यह देखेंगे की मीराँ के पदों मे निर्गुण सम्प्रदाय की शब्दावली का प्रयोग अवश्य किया गया है । उनकी भक्ति की तरह कान्ताभाव भी है और उसमें विरह की प्रधानता भी है । केवल शब्दों के प्रयोग के कारण ही किसी को सम्प्रदाय की सीमाओं में बाँध लेना ठीक नहीं । इस सम्बन्ध में परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि "मीराँबाई की कुछ प्रमाणिक रचनाओं में, यदि कहीं प्रसंग वश, निर्गुणोपसना संतों की शब्दावली भी दीख पड़े तो इसके कारण, उनकी सगुणोपासना के विषय में किसी विशेष अन्तर की कल्पना करना ठीक नहीं ।"[3] मीराँ की विचारधारा पर युग की प्रचलित चिन्तनधारा का प्रभाव पड़ा । उन्होंने निर्गुण की शब्दावली का प्रयोग भी किया पर उस निर्गुण पर सदैव सगुण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है । मीराँ के पदों मे साम्प्रदायिक दृष्टिकोण कहीं पर भी नहीं दिखाई देता । उनका तो केवल एक ही उद्देश्य था और वह था कृष्ण की अराधना ।

मीराँ के पदों में सगुण भक्ति—मीराँ के पदों में सगुण भक्ति की ही प्रधानता है । मीराँ के प्रियतम सदैव उसकी आंखों के सामने सगुण रूप में ही विद्यमान रहते थे । मीरां उनकी मोहनी मूर्ति और साँवरी सूरत पर मुग्ध हो चुकी थीं ।[४] मीराँ ने उनकी इस छवि का वर्णन कई पदों में किया है ।[५] वे कृष्ण की विविध चेष्टाओं

---

१. (१) री मेरे पार निकल गया, सतगुरू मारया तीर ।
मीराँ पदा तृतीय सं० पृ० ५६.

(२) सतगुरू भेद बताइया, खोली भरम किवारी हो । वही पृ० ५५.

(३) मेरे सतगुरू विरह लगाय के । वही पृ० ५४.

२. मीराँबाई की पदावली (तृतीय संस्करण) पृ० ६१, ६२.

३. मीराँबाई की पदावली (नवम संस्करण) पृ० ४१.

४. मोहण मूरत सांवरां सूरत णेणा बण्या विशाल ।
अधर सुधारस मुरली राजां उर बैजन्ती माल ।।
मीराँ पदा० पृ० १०२.

५. (१) हे मां बड़ी बड़ी अंखियन वारो, सांवरो मो तन हेरत हंसिके ।
भौंरू कामन बान बांके लोंचन, स्मारत हियरे कसिके ।।
वही० पृ० १०२.

(२) मीरां के प्रभु गिरधर नागर, निरख वदन म्हारो मनड़ो फंस्यो ।
वही पृ० १०२.

का भी वर्णन करती है। वह कृष्ण स्पष्ट ही 'नंदनंदन' है।[1] मीराँ अपने प्रियतम कृष्ण को सभी भाँति से प्रसन्न रखना चाहती हैं। वह उसके आगे नृत्य करती है।[2] उसको रिझाँती रहती है।[3] मीराँ ने अपने आपको ही कृष्ण की सेवा में समर्पित कर दिया, अब कृष्ण की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह जो चाहें सो करें।[4] इस प्रकार मीरा ने सगुण भगवान श्री कृष्ण को सम्बोधित करके ही ये पद लिखे हैं। इनके साथ ही साथ सगुण भक्ति में नवधा भक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। मीराँ के पदों में नवधा भक्ति के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। श्री मद्‌भागवत[5] में नवधा भक्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है। नवधा भक्ति के प्रमुख नौ सोपान है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवनम्, अर्चन दास्यसाख्य और आत्म निवेदन। मीराँ अपने इष्टदेव के गुणों को सत्सग की सहायता से सदा श्रवण किया करती थी। सत्संग के कारण ही "साधा ढिग बैठ बैठ लोक लाज खूयाँ" उन्हें बदनाम भी होना पड़ा था। उनकी विचारधारा में स्थिरता थी और उसी के फलस्वरूप वे जहर तक भी पचाने में समर्थ हो सकीं। वे दिनरात अपने मन मोहन, नटवर नागर का कीर्तन ही किया करती थी। वे कीर्तन के आगे किसी की भी परवाह नहीं किया करती थीं। "जिन मारग म्हारां साध पधारे, उन मारग म्हैंजास्यां" कहकर मीराँ अपनी दृढ़ता का ही परिचय देती है। वह गाती थीं, नाचती थी और सभी भांति अपने प्रिय को रिझाने से लिये प्रयत्नशील रहती थीं। मीराँ तो प्रतिपल कृष्ण को ही स्मरण करती रहती थी "चितचढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अड़ी गढ़ी।" कहकर कृष्ण के स्मरण में लीन रहने की ओर ही संकेत किया है। मीरां पद-सेवा में भी प्रतिपल प्रस्तुत रहा करती थीं "मण थें परस हरि के चरण" द्वारा वे अपनी समस्त भावनाओं को कृष्ण के चरणों में समर्पित करती हैं। वह तो अर्चना में ही लीन रहती थीं। मीराँ कृष्ण की वन्दना तो करती रहती हैं "म्हारो प्रणाम बाँके बिहारी जी" साथ ही वह सभी तरह से कृष्ण के सेवा में प्रस्तुत रहती है। "म्हाणे चाकर

---

१. सांवरो नन्द नन्दन, दीठ पड्यां माई। वही पृ० १०४.

२. म्हां गिरधर आगे नाच्यारी। वही पृ० १०५.

३. रेण दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाही रिझाऊं। वही पृ० १०६.

४. जहां बैठवें तितही बैठूं बेचे तो विक जाऊं। वही पृ० १०७.

५. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
श्रीमदभागवत ७।५।२३

राखो जी, गिधारी लाला चाकर राखों जी" कहकर वे अपने आप को कृष्ण के चेरी कहती हैं और कृष्ण की इच्छानुसार बिकने को भी तैयार हैं।

सख्य भाव का भी इससे अच्छा क्या उदाहरण होगा कि वे दिन रात उन्हीं के साथ खेलती रहती हैं "रेण दिना बाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं वाहि रिझाऊं।" वे कभी कभी कृष्ण के साथ "झिरमिट" भी खेलने मे लिए चली जाती हैं। मीराँ ने सम्पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया है अब तो "जो पहिरावे सोई पहिरूं, जो देइ सोइ खाँऊँ" और "जहां बैठावे तितही बैठूं, बेचे तो बिक जाऊँ" चरम सीमा आ गई है इस प्रकार नवधाभक्ति के कई उदाहरण मीरां के पदों में मिले।

मीराँ के पदों में माधुर्य भक्ति के तीनों अंगों का भी समुचित निर्वाह हुआ है। रूपवर्णन और सौन्दर्य की भावना तो मीरां के पदों की विशेषता है। कृष्ण रूप मीराँ को इतना अधिक तन्मय कर देता था कि वह अपने आप की सुध भी भूल जाती थी। विरह-वर्णन भी मीराँ के पदों मे उच्चकोटि का हुआ है। यह विरह-वर्णन अनुभूति जन्य है। पीड़ा को मीराँ ने बहुत गहराई से पहिचाना था। उस दर्द का तो एक ही इलाज था और वह था कृष्ण। अतः मीरा ने अपनी समस्त वृतियों को कृष्ण के समर्पित कर दिया था। और वह अपने और कृष्ण के बीच की दूरी को मिटा देने में समर्थ भी हुई। ऐसी स्थिति भी आई जहां मैं और तू का अन्तर समाप्त हो गया।

मीराँ के पदों में कृष्ण के दोनों ही रूपों की चर्चा मिलती है। पर मीराँ का लक्ष्य तो उस गिरधारी को किसी न किसी तरह पा लेना था। मीराँ उसी के लिए युग के साथ संघर्ष करने को भी प्रस्तुत है। युग चिन्तन का प्रभाव भी हमें मीराँ के पदों में स्पष्ट लक्षित होता है। मीराँ की मनः स्थिति के अनुरूप ही कृष्ण का रूप भी मानस पटल कर विविध रूप धारण करता है पर सर्वाधिक प्रभावशाली कृष्ण का सगुण रूप ही रहा जिसके रूप-लावण्य पर मीराँ मुग्ध होकर अपने आपको भूल जाती थी और मैं और तू का अन्तर समाप्त हो जाता था।

६

मीराँ और साम्प्रदायिक चिन्तन

प्रत्येक युग की कुछ विशिष्ट चिन्तनधाराएं होती हैं। हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में भक्तिभावना की प्रधानता थी। भारत का लोक-जीवन उस समय भगवान के गुणगान में मग्न था। अपने हृदय की समस्त श्रद्धा को समर्पित कर भक्त भगवान का गान करने में तन्मय हो रहे थे। भक्तिकाल की यह चिन्तनधारा हमें प्रमुख दो रूपों में मिलती है—सगुण भक्ति शाखा और निर्गुण भक्ति शाखा। आगे चलकर इनके भी प्रमुख दो विभाग सगुण भक्ति कृष्ण भक्ति और राम भक्ति और निर्गुण भक्ति ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दिखाई देते हैं।

सर्व प्रथम भगवान के रूप को लेकर भक्ति की चिन्तनधारा में भेद का प्रश्न उठा। भगवान के सगुण और निर्गुण रूपों की विशेष चर्चा चली। कबीर ने तो अपने चिन्तन को सगुण और निर्गुण से परे एक और ऊँचे सोपान पर ले जाकर प्रतिष्ठित किया। भगवान के रूप भेद के साथ ही उपासना पद्धति और साधना आदि में भी धीरे धीरे अंतर बढ़ता गया। इसी अन्तर ने सम्प्रदाय और पंथों का निर्माण किया।

भक्ति युग में धार्मिक सम्प्रदाय और पंथों की संख्या बहुत अधिक मात्रा में बढ़ गई। प्रत्येक सम्प्रदाय और पंथ अपनी सीमाओं का रूप निर्माण करने लगा। अब उपासना और साधना भी पंथ के नियमानुभूत होने लगी। सम्प्रदाय के अनुयायियों के लिए निश्चित सीमा में ही आध्यात्मिक विकास करना होता था। सम्प्रदाय और पंथों की बहुलता देखते हुए आलोचक जब भक्त युग के किसी कवि का अध्ययन करता है तो उसे यह सोचना होता है कि वह कवि कौनसे पंथ या सम्प्रदाय से सम्बन्धित था।

मीराँ ने जिस समय अपने साहित्य का सृजन किया उस समय राजस्थान में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय और पंथ थे। मीराँ की प्राप्त साहित्यिक सामग्री के आधार पर हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि कौन से सम्प्रदाय ने मीराँ को किस सीमा तक प्रभावित किया।

१. **नाथ सम्प्रदाय**—नाथ सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्तक, गोरखनाथ थे। इस सम्प्रदाय की साधना पद्धति हठ योग के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्प्रदाय में हठयोग के साथ ही साथ काया—शोधन और मनोमारण पर भी विशेष बल दिया जाता है। इस सम्प्रदाय की साधना का मुख्य उद्देश्य चित्तवृतियों को अर्न्तमुखी करना है।

मीराँ के पदों में भी कुछ पद ऐसे मिलते हैं, जिनमें इस सम्प्रदाय की शब्दावली के हमें दर्शन होते हैं—

१. **जोगिया जी आज्यो जी रण देश।**
नेणज देखू नाथ नै धार करूं आंदेश॥

२. **तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूंगी कासी।**
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल की दासी॥

३. **जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पाँइ परूं में तेरी चेरी हों।**

४. **काना बिच कुण्डल, गले बिच सेली, घर घर अलख जगाया रे॥**

५. **त्रिकुटी महल में बना है झरो, तहाँ से झाँकी लगाऊं री।**
सुन्न महल में सुरत जमाऊं सुख री सेज बिछाऊं री॥

मीराँ के उपर्युक्त पदों में प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर कुछ विद्वानों ने मीराँ का संबंध नाथ-सम्प्रदाय के किसी विशेष से जोड़ने का प्रयत्न किया है। पद्मावती शबनम लिखती हैं कि "मीराँ शुद्ध सगुणोपासना की परम्परा में तो कदापि नहीं आ सकतीं, अपितु वह नाथ परम्परा के ही अधिक निकट पड़ती प्रतीत होती हैं।"[१]

मीराँ का नाथ परम्परा से संबंधित मानने के लिये कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं मिलता। एक ओर जहाँ मीराँ हठयोग की चर्चा करती हैं। दूसरी तरफ कर्म

---

१. मीराँ एक अध्ययन : पद्मावती शबनम पृ० ११२,

२. तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी।
आसण मांडि गुफा में बैठो, ध्यान हरि को लगायो।
गल बिच सेली हाथ हाजरिया, अंग भभूति रचायो॥
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सोई पायो। मीराँ

फल के सामने योग के गोरख-धन्धे को समझने का स्पष्ट उल्लेख करती हैं। मीरॉं का अटूट विश्वास है। नाथ-सम्प्रदाय की प्रचलित परम्पराओं को मीरॉं ने कभी नहीं अपनाया। मीरॉं के साहित्य के अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि नाथ—सम्प्रदाय की शब्दावली का प्रयोग मात्र ही मीरॉं ने किया है। युग में प्रचलित विचारधारा के चन्द शब्दों का प्रयोग मात्र के आधार पर हम किसी कवि को उस सम्प्रदाय का नहीं मान सकते।

संतमत और मीरां—भक्तियुग में संतमत का प्रचार और प्रसार सर्वाधिक मात्रा में हुआ। संत अपनी वाणी द्वारा संपूर्ण भारतीय जनता को प्रभावित कर रहे थे। राजस्थान में भी संतों की वाणी बहुत अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। राजस्थान में अनेक सम्प्रदाय और पंथों का प्रचलन बढ़ता जा रहा था।

मीरॉंबाई ने कुछ पदों में रैदास जी को अपना गुरू माना है।[१] और इसी आधार पर परशुराम चतुर्वेदी मीरॉं को रैदासी संतों से प्रभावित मानते हैं वे लिखते हैं "संत रैदासजी का नाम मीरॉंबाई की उपलब्ध रचनाओं की बहुत सी प्रतियों में आता है। जिस कारण उसकी ओर ध्यान देने के लिये बाध्य हो जाना पड़ता है। परिणामस्वरूप उसके आधार पर इतना अनुमान कर लेना कदाचित् सत्य से अधिक निकट हो कि मीराबाई पर संत रैदास जी की बानी अथवा रैदासी संतों का भी प्रभाव पड़ा होगा।"[२] अपनी पुस्तक उत्तरी भारत की संत परम्परा में भी वे अपने इसी विचार का समर्थन करते हैं।[3] इस संबंध में सोचने से यह निश्चय करना अनिवार्य है कि मीरॉं के प्राप्त पद किस सीमा तक प्रमाणिक हैं ? इस संबंध में अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता है। साथ ही मीरां के सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययन से जो भाव सामग्री मिलती है वह रैदासी सम्प्रदाय की सीमाओं में किसी भी तरह नहीं आ सकती है।

मीरां के पदों में निर्गुण ब्रह्म की आराधना और राम रमैया शब्दों के प्रयोग को देखकर विद्वानों ने मीरां को कबीर पंथ की ओर भी ले जाने का प्रयत्न किया है जो कि निर्मूल प्रमाणित हो चुका है।

---

३. करम गत टारा णाही टरां ॥ मीरा पदा० पृ० १५७,

४. (१) काशी नगर नां चौक मा मो गुरु मिला रोहीदास—
(२) गुरू मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ग्यान की गुटकी—
(३) रैदास संत मिले मोही सतगुरू, दीन्हा सुख सहदानी—

५. मीरांबाइ की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी पृ० २५४.

६. उत्तरी भारत की संत परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी पृ० ३६.

वास्तव में मीराँ के पदों में कुछ सीमा तक भावसाम्य को देखकर उसे सम्प्रदाय की सीमाओं में आबद्ध करना ठीक नहीं है। वह भगवान के दोनों ही रूपों को मानती है और सिद्धान्तः वह सम्प्रदायिकता से दूर हो रहीं अतः हम मीराँ को संतमत की साधिका नहीं मान सकते।

वैष्णव सम्प्रदाय :—वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार और प्रसार भी बहुत तीव्र गति से हो रहा था। मीराँ कृष्ण की उपासिका थी जो सम्प्रदाय का प्रमुख आराध्य है। अतः यह देखना है कि वैष्णव सम्प्रदाय ने मीराँ को किस सीमा तक प्रभावित किया और उनके प्रमुख आचार्य कौन थे।

कुछ लोगों की धारणा है कि मीराँ वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थीं। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार उनका पुरोहित रामदास वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया था।[1] पर उसी वार्ता के आगे वाले अंश द्वारा इस तथ्य का खंडन हो जाता है, और यह स्पष्ट हो जाता है कि मीराँबाई को वल्लभ सम्प्रदाय के प्रति आस्था नहीं थी। वल्लभ सम्प्रदाय के कुछ दार्शनिक चिन्तन और नवधा भक्ति का मीराँ में उल्लेख है। यह साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं। अतः मीराँ को इस सम्प्रदाय से संबंधित नहीं कहा जा सकता।

वियोगी हरि के मतानुसार मीराँबाई के सिद्ध गुरू जीव गोस्वामी ही थे, और वे इसी कारण श्री चैतन्य सम्प्रदाय की वैष्णवी थी।[2] डा० सुकुमार सैन का भी मत है कि श्री चैतन्य के द्वारा प्रदर्शित कृष्ण भक्ति का मीराँ पर प्रभाव अवश्य है।[3] रामप्रसाद त्रिपाठी ने भी मीराँ स्मृति ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि मीराँ की गणना निम्बार्क या चैतन्य सम्प्रदाय में ही की जा सकती है।[4]

मीराँ ने जीव गोस्वामी जी से दीक्षा ली थी। इसका कोई प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होता। न ही मीराँ के पदों में हमें इस संबन्ध की कोई सामग्री उपलब्ध होती है। अतः हम मीराँ को चैतन्य सम्प्रदाय की वैष्णवी नहीं मान सकते।

---

१. चौरासी वैष्णव की वार्ता, प्रसंग १, सं० १९३० पृ० १३१-१३२.

२. मीराँबाई, सहजो बाई, दयाबाई रा पद्य संग्रह : वियोगी हरि

३. मीराँबाई और श्री चैतन्य मीराँ-स्मृति ग्रन्थ : डा० सुकुमार सेन पृष्ठ ३८.

४. मीराँ स्मृति ग्रन्थ भूमिका : रामप्रसाद त्रिपाठी ।

निष्कर्ष :—साहित्यकार जिस युग में जन्म लेता है, युग कि चिन्तनधारा का प्रभाव उसके साहित्य पर भी अवश्य पड़ता है। मीराँ की प्राप्त साहित्यिक सामग्री पर भी उसके युग का प्रभाव अगर पड़े तो कोई आश्चर्य की वस्तु नहीं। मीराँ अपने जीवन काल में अनेक साधु और संतों के सम्पर्क में आई। भ्रमण भी मीराँ ने बहुत अधिक मात्रा में किया था अतः मीराँ के वातावरण ने उन्हें प्रभावित किया। जो कुछ भी प्रभाव है वह स्वाभाविक रूप से है, साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को लेकर नहीं। मीराँ के पदों में नाथ-सम्प्रदाय की शब्दावली, सन्तों का भावसाम्य वल्लभ सम्प्रदाय और चैतन्य सम्प्रदाय की कुछ विशिष्ट बातों की झलक हमें मिलती है। पर केवल कुछ वस्तुओं के आधार पर ही तो हम मीराँ को किसी सम्प्रदाय विशेष की सीमाओं में आबद्ध नहीं कर सकते हैं।

मीराँ के प्राप्त पदों से यह स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित नहीं है। मीराँ के जीवन का तो एक मात्र उद्देश्य अपने प्रियतम कृष्ण से मिलना था। अपने प्रिय की चर्चा, कीर्तन एवं गान में ही मीरां मग्न रहती थी। मीराँ की भक्ति भावना और प्रेम सम्प्रदाय के बन्धनों से मुक्त ही था। न तो मीराँ किसी सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित हुई और न ही उसने कोई सम्प्रदाय चलाया ही।

१०

मीराँ के साहित्य में गीति-तत्व

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है । वह अपने हृदय के भावों को किसी न किसी रूप में व्यक्त करना चाहता है । मानव हृदय की अनुभूतियों को वाणी के माध्यम द्वारा सहज अभिव्यक्ति मिल पाती है । प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का गान मानव ने देखा और सुना है। उसी मधुरता की लय में मानव हृदय से ही गान का स्वर फूट पड़ा होगा । मानव हृदय की भावनाएँ जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं तो गीतो का प्रादुर्भाव होता है । गीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ भी वाद-विवाद हो परन्तु एक वस्तु तो सभी मानते हैं कि गीतों में भावना की प्रधानता होती है। गीति साहित्य के अध्ययन की सुविधा के आधार पर विद्वानों ने उसे परिभाषा की सीमा में बाँधने का प्रयन्न किया है। गीतिकाव्य की कुछ प्रमुख परिभाषाओं को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

१. सुख दुख की भावावेश मयी अवस्था, विशेषकर गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है । —महादेवी वर्मा.

२. गीति काव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और वाह्य-जगत को अपने अन्तःकरण में ले जा कर उसे अपने भावो से रंजित करता है । आत्माभिव्यंजना संबंधी कविता गीति काव्य में ही छोटे-छोटे गेय पदों मे मधुर भावनापन्न, आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक भी जान पड़ती है । उसमें शब्द की साधना के साम साथ स्वर संगीत की भी साधना होती है । भावना सुकोमल होती है । और एक-एक पद में पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है । कवि उसमें अपने अन्तर्तम को स्पष्टतया दृष्टव्य कर देता है । वह अपने अनुभवों और भावनाओं से प्रेरित होकर उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति कर देता है ।

— बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०

३. गीति काव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता है । सहज शुद्ध भाव, स्वच्छन्द कल्पना, तर्कवाद और न्याय मूलकता से युक्त विचार, ये ही गीति काव्य की वास्तविक विशेषताएं हैं । —रस्किन.

३. वैयक्ति की छाप गीति काव्य की सबसे बड़ी कसौटी है, किन्तु वह व्यक्ति वैचित्र्य में सीमित न रह कर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होता है, जिससे प्रत्येक पाठक इसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादाम्य स्थापित कर सके । —हडसन.

५. कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिव्यक्ति देने के विधान को गीति काव्य कहते हैं।········गीतिकाव्य में मानवीय वृत्तियाँ अपनी सहज स्थिति में अभिव्यक्ति होती हैं, अतः उसमें आन्तरिक सौन्दर्य-गठन और अन्तर्वेग की तरलता रहती है ।

—हिन्दी साहित्य कोश.

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से हमें कुछ प्रमुख तत्व मिलते हैं जो गीतिकाव्य के लिये अनिवार्य हैं—

१. सहज आत्माभिव्यक्ति —
२. संगीतात्मकता—
३. अनुभूति की पूर्णता—
ब. संक्षिप्तता—
४. सरस भाषा—

१. **सहज आत्माभिव्यक्ति** :—मीराँ के पदों में उनके हृदय की वेदना है । उनका प्रत्येक पद अनुभूति पूर्ण है । मीराँ की वेदना में व्यक्तिगत अनुभूति की तीव्रता है जो पाठक के हृदय को स्पर्श कर लेती है । महादेवी कहती हैं गीति यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख दुख ध्वनी कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है इसमें सन्देह नहीं । मीराँ के हृदय मे बैठी हुई नारी और विरहणी के लिये भावातिरेक सहज प्राप्य था उसके बाह्य राज रानी पन और आन्तरिक साधन में संयम के लिये पर्याप्त अवकाश था। "इसके अतिरिक्त वेदना में भी आत्मानुभूति थी, अतः उसका हेली मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न जाने कोय सुनकर यदि हमारे हृदय का तार तार उसी ध्वनी को दोहराने लगता है, रोम रोम उसी वेदना का स्पर्श कर लेता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[1]

---

१. यामा, अपनी बात पृ० ६१.

मीराँ के पदों में व्यक्तिगत जीवन के अनुभव हैं। मीराँ की वेदना अपने प्रियतम के विरह की वेदना है अतः उसमें तीव्रता की प्रधानता है। मीराँ ने अपने पदों में हृदयगत भावनाओं को उसी सहज रूप में प्रस्तुत किया है। "मीरांबाई ने जो कुछ भी लिखा है, उसमें उनकी सहानुभूतिगत वेदना की प्रखरता अपनी सचाई में समुज्जवल है और जब उसे व्यक्तिगत प्रेम की अनुभूति में प्रवण व्यक्ति सुनता है तब उसे अपनी तन्मयता की दशा में जो शाँति मिलती है वह जीवन के अन्य पक्षों से आगत वेदना का गान करने वाली वाणी से नहीं मिल सकती।[1]" मीराँ ने अपने जीवन में प्रेम के सुमन केवल कृष्ण की स्मृति, अराधना और उपासना के लिये संजोये थे। वे जीवन और गगन से संघर्ष करने के लिये कटिबद्ध दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने जो कुछ भी सोचा उसे उसी रूप में व्यक्त कर दिया। मीराँ के जीवन के दो दृश्य सामने आते हैं एक वह जब वह प्रिय मिलन के रंगों में घुली हुई मदहोश-सी होती है और दूसरा वह जब विरह की ज्वाला में जलती हुई कोई दीप शिखा। मीराँ कहती हैं—

१. माई री म्हा लियों गोविन्दों मोल—
२. म्हां गिरधर के रंग राती, सैंयां म्हां—
३. जोगी मत जा, मत जा, मत जा, पाइ परूं मैं तेरी चेरी हों—
४. हरि विण क्यूं जिवां री माय—
५. दरस बिण दूखां म्हारा नैण—

मीराँ के पदों में मीराँ की आत्मा का स्वर है। वह स्वर अपने सहज अभिव्यक्ति के कारण शाश्वत सौन्दर्य को लिये हुए है।

२. **संगीतात्मकता**—संगीत गीति काव्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। गीति के बोल संगीत का स्वर पाकर मुखरित हो उठते हैं। संगीत के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त की जा सकती है; बुझे हुए चिराग संगीत के स्वर लहरियों से अनायास ही प्रज्वलित हो उठते हैं। पत्थर भी पिघल गया हो तो कोई आश्चर्य की वस्तु नहीं। वही संगीत जब काव्य का सहारा पा लेता है तो उसके लिये कुछ भी असंभव नहीं रह जाता है। टामस करलाइल के काव्य में छन्दों की सार्थकता पर विचार करते हुए कविता को संगीतमय विचार कहा है। एडगर एलैन पो का मत है कि संगीत जब आनन्ददायक विचारों से युक्त होता है तो उसे कविता कहते है। काव्य और संगीत का अन्योन्यश्रित संगीत तो गीति-काव्य का प्राण है।

मीराँ के गीतों में संगीत के दोनों रूप बहुत घुले मिले हैं। एक आत्मा का संगीत

---

१. गीति काव्य का विकास : लालधर त्रिपाठी प्रवासी पृ० ४३४.

जिसे हम आन्तरिक संगीत कह सकते हैं और दूसरा वाह्य संगीत कहा जा सकता है। आन्तरिक संगीत और बाह्य संगीत आपस में इस तरह मिले हुए दिखाई देते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। मीराँ की आन्तरिक स्वर लहरी प्रत्येक गीत में एक कसक, वेदना और टीस को अभिव्यक्त करती है। मीराँ के पदों में संगीत की योजना सुन्दर बन पड़ी है। मीरॉ के अनेक पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग किया जाता है—

राग मल्हार—झुक आइ बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमंग्यो मेरो मनवा भनक सुनी हरि आवन की ॥
नन्हीं नन्हीं बूँदन मेहा बरसे शीतल पवन सोहाबन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर आनन्द मंगल गावन की॥

मीरॉ के पदों में विविध राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है जिन्होंने उनके पदों के रूप को और भी निखार दिया।

३. (अ) अनुभूति की पूर्णता—
(ब) संक्षिप्तता—

मानव का मन अनुभूतियों से पूर्ण है। कुछ अनुभूतियाँ ऐसी होती हैं जो अपने हल्के धुंधले चित्रों के रूप में धीरे धीरे सिमटने लगती हैं। पर मानव में की कुछ अनुभूतियाँ ऐसी भी होती हैं जो सबल, वेगमय और घनीभूत होती हैं। मानव हृदय की घनीभूत अनुभूतियाँ गीति-काव्य को जन्म देती हैं। मीरॉ के गीति-साहित्य में घनीभूत अनुभूतियाँ अपने सहज रूप में प्रकट हुई हैं। मीरां के पदों में अनुभूति की तीव्र गहनता है। प्रत्येक गीत में अनुभूति की पूर्णता है।

१. काव्य शब्दों के एक विशेष आरोह-अवरोह संगीत-संक्रम का संबंध तारतम्य है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थ की भावभूमि पर पाठक को ले जाते हैं वहाँ बाद के द्वारा श्रव्यभूति विधान भी करते हैं। काव्य कला का आधार भाषा है जो नाद का ही विकसित रूप है। अस्तु, काव्य और संगीत दोनों के आस्वादन का माध्यम एक ही है। केवल अन्तर इतना है कि एक का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप है दूसरे का आधार नाद का आरोह-अवरोह है।

—साहित्य का मर्म-हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ११

माई री म्हाँ लिया गोविन्दों मोल।
थें कह्याँ छाणे म्हाँ काँ चोड्डे, लिया बजन्ता ढोल।
थें कह्याँ मुंहोघो म्हाँ कह्याँ सस्तो, लियाँ री तराजाँ तोल॥
तण बारां म्हाँ जीवण बाराँ, बाराँ अमोलक मोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यों, पूरब जनम को कोल।

एक ही पद में हृदयगत अनुभूतियाँ साकार हो उठी हैं। मीराँ कृष्ण से प्रेम करती हैं और उस प्रेम के लिये अपने जीवन तक को भी न्योछावर करने के लिये प्रस्तुत हैं। समाज की आलोचना का उन्हें कोई भय नहीं है आशा है तो केवल प्रभु के दर्शन की।

अनुभूति की पूर्णता के साथ ही साथ संक्षिप्तता भी गीतिकाव्य के लिए अनिवार्य हैं। मीराँ के पदों में भावों का एक्य है। संक्षिप्तता मीराँ के पदों की विशेषता है—

म्हाँरो प्रणाम बाँके बिहारी जी।
मोर मुकट माथ्यां तिलक विराज्याँ, कुण्डल अलका कारी जी।
अधर मधुर धर वंशी वजावाँ रीझ रिझाँवा ब्रजबारी जी।
या छब देख्याँ मोहयाँ मीराँ, मोहन गिरवरधारी जी।

एक ही छोटे से पद में मीराँ अपने वेदना को कितने सुन्दरतम ढंग से व्यक्त कर देती हैं। उनके पदों में अनुभूति की पूर्णता है और भावों का एक्य "उनके जीवन में एक ही भाव है और एक ही रस। मधुर-भावना जन्य उल्लास तथा विषाद की कतिपय भावनाएँ ही उनके जीवव में व्याप्त है।"[१] मीराँ के पदों में अनुभूति की पूर्णता और संक्षिप्तता गीति काव्य के अनुकूल है।

४. **सरस भाषा**—गीति काव्य के लिये भाषा सरस, कोमल और सरल होनी चाहिये। भाषा का सौन्दर्य काव्य के रूप को निखार देता है। भाषा के माध्यम से ही भावों को सुन्दरतम रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। मीराँ की भाषा अपनी मधुरता और सरलता के लिये प्रसिद्ध है। "उनकी कविता का सौन्दर्य उस स्वच्छंद ग्राम-बाला के निखरे हुए सौन्दर्य के समान है जिसके जीवन में न कोई ग्रन्थियाँ हैं न आडम्बर। कोमल कल्पना की प्रतिमूर्ति बाला की जिस प्रकार अर्जित सौन्दर्य-प्रसाधनों से युक्त नारी से तुलना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार मीरां की कोमल-कान्त पदावली की काव्य शास्त्र में निपुण कवियों की पदावली से तुलना करना समीचीन नहीं होगा।"[२] मीरा ने अधिकाशतः राजस्थानी और गुजराती का प्रयोग किया है। कोमलकान्त पदावली और सहज अभिव्यक्ति ने काव्य माधुर्य को

---

१. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्पः डा० सावित्री सिन्हा पृ० ४२६.

२. ब्रजभाषा के कृष्णा-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्पः डा० सावित्री सिन्हा पृ० ४३७.

प्रवाहित किया है। जो हृदय के तारों को छेड़े बिना नहीं रह सकता। मीरां की भाषा और शैली गीतिकाव्य के पूर्णतः अनुकूल है।

डा० रामकुमार वर्मा ने मतानुसार "गीति-काव्य के अनुसार मीरां कविता का आदर्श है। मीराँ ने न तो रीति शास्त्र की गवेषणा की ओर न अलंकार शास्त्र की। उनके हृदय में निर्झर की भांति भाव आये और अनुकूल स्थान आकर प्रकट हो गए। भाव, अनुभाव, संचारी भाव के बादलों में उनकी कविता-चन्द्रिका नहीं छिपी, वरन् निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़ी। हृदय की भावना मन्दाकिनी की भाँति कलकल करती हुई आई और मीराँ के कंठस्थ सरस्वती की संगीतधारा में मिल गई! यह भावना संगीत का सार बने और उसी में मीराँ के हृदय की अनुभूति मिली। मीराँ की वेदना ने गीतिकाव्य में अपने को व्यक्त किया है जो सीधे हृदय को प्रभावित करती है। डा० श्री कृष्णलाल के मतानुसार "पद रचना में सूरदास और मैथिल-कोकिल विद्यापति ने भी अद्भुत कौशल प्रदर्शित किया है। परन्तु सीधे हृदय पर चोट करने वाली रचना मीराँ के ही कंठ से विस्तृत हुई थी।"[२] मीराँ के पदों में सहजआत्माभिव्यक्ति, संगीतात्मकता, अनुभूति की पूर्णता, संक्षिप्तता और सरल भाषा का सुन्दर समन्वय हुआ है। "मीराँ के पदों की गीति-भावना भक्तिकाल के काव्य में बेजोड़ है।"[3] गीति काव्य की दृष्टि से मीराँ का साहित्य में उच्च स्थान है।

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा पृ० ५८३.

२. मीरांबाई : डा० कृष्णलाल पृ० १६४.

३. हिन्दी साहित्य कोश: पृ० ५२६.

11

मीराँ के साहित्य में प्रकृति चित्रण

मानव और प्रकृति का बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्रकृति के खुले प्रांगण में ही मानव जीवन का विकास हुआ है। प्रकृति ने ही जीवन आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। प्रकृति से मनुष्य ने बहुत कुछ सीखा है। प्रकृति मानव को सबसे अधिक प्रभावित करती है अतः जब साहित्यकार साहित्य का सृजन प्रारम्भ करता है तो जाने-अनजाने में ही प्रकृति की चर्चा उसकी रचनाओं में आ ही जाती है। साहित्य के इतिहास को देखने से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक साहित्यकार की रचना में प्रकृति की चर्चा तो अवश्य मिलेगी। मीराँ के साहित्य का अध्ययन करने से हमें उसमें प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कुछ पद प्राप्त होते हैं। उन पदों के आधार पर हम मीराँ के साहित्य में प्राप्त प्रकृति चित्रण की चर्चा करेंगे।

मीराँ के साहित्य सृजन का मूल उद्देश्य कृष्ण की अराधना ही था। कृष्ण मीराँ के प्रियतम और परमेश्वर सब कुछ हैं। मीराँ अपने प्रियतम से मिलना चाहती है। मिलन में एक तरफ तो बाधा उपस्थित होती है और दूसरी तरफ प्रकृति विरहणी की वेदना को और तीव्र कर देती है। आबें की डाली पर कोयल पंचम स्वर में अलापती है और उधर विरहणी की वेदना तीव्रतम हो उठती है।[1] सावन का महिना आ गया है।[2] और आकाश में बिजलियां चमकने लग गई है। ऐसे

---

१. आबां की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अरू जग केरी हांसी।
मीराँ पदा० १२१.

२. सावण आवण हरि आवण री — मीराँ पदा० पृ० १२.

ही समय में आकाश में काले बादल मंडराने लगे हैं।[1] इन बादलों से विरहणी को आशा थी कि ये कभी न कभी हरि का संदेश लाएँगे पर अब तो आशा का क्या करे ?। बादलों को देखकर दादर, मोर. पपइया और कोयल आदि बोलने लगी है।[2] आकाश में काली बिजलियां चमकती हैं और बादलों की गर्जना से विरहणी की व्यथा और भी बढ़ जाती है। कालिदास के मेघदूत यक्ष के विरह की व्यथा यक्षिणी को पहुँचा देने के लिये संदेश वाहक बनाये गये थे और यहाँ मीराँ आशा करती है उन मंडराते हुए बादलों से कि शायद वे उसके प्रियतम का समाचार लेकर आये हों।

मीराँ को पपइया के बोल अब मीठे नहीं लगते हैं। क्योंकि पपइया पीव-पीव बोलकर विरहणी को प्रिय का बार-बार स्मरण दिलाता है। क्योंकि विरहणी को यह सब पसन्द नहीं है। अतः मीराँ कहती है कि किसी विरहणी नायिका ने ऐसा सुन लिया तो तुम्हारी चोंच काट ली जायेगी। इस विरोध में एक कारण और भी है कि मीराँ अपने प्रियतम पर एकाधिकारी चाहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि पपइया उस अधिकार के बीच में हस्तक्षेप करता है।[1] मीराँ इसलिये प्रियतम को सन्देश देने के लिये भी कौवे को भेजने के लिये आतुर है जो विरह का प्रतीक सा ही दिखाई देता है।

---

१. मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुं न लायो रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुनाया रे ॥
इक कारी अंधियारी बिजली चमके, विरहणि अति डरपाये रे।
इक गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाबो रे॥
इक कारी नाग विरह अति जारी, मीराँ मन हरि भाये रे।
मीराँ पदा० पृ० १२६.

२. पपइया म्हारो कबरो बैर चितारयां।
म्हा सां बूं ही अपणे भवण मां पियु पियु करन पुकारयां।
मीराँ पदा० १२७.

३. पपइया रे पिव की वाणि न बोल।
सुणि पावेली विरहणी रे, थारो रा ले ली पांख मरोड़।
चांच कटाऊं पपइया रे, ऊपर कालर लूण।
पीव मेरो मैं पीव की रे, तू पिव कहे सू कूण॥
मीराँ पदा० पृष्ठ १२०.

मीराँ प्रियतम गिरधर नागर को उपालंभ देती हुई मीराँ कहती है कि आपने सावन महिने में आने का वचन दिया था ।[1] उसी समय से मैं आपका इन्तजार कर रही हूँ । सावन और भादवें में सभी तालाब जल ने भरे हुए हैं और उन सभी को देखकर विरहणी बेहाल हो रही है ।[2] बारहामासा में बारह महिनों के प्रकृति सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है । राजस्थानी साहित्य में कई बारहमासे बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं । मीराँ का यह पद भी बारहमासे के अन्तर्गत ही आएगा । मीराँ ने इस पद में प्रियतम को दर्शन देने के लिये प्रार्थना की है । प्रत्येक महिना अपनी विशेषता को लेकर के आता है । विरह में व्याकुल मीराँ प्रिय के मिलन के लिये जोशी को पूंछने की सोच रही है ।[3]

---

१. सावण आवण कह गया बाला, कर गया कोल अनेक ।
गिणता-गिणता घंस गई रे म्हांरा आंगलिया री रेख ॥
मीराँ पदा० पृ० १३७.

२. आया सावण भादवा भरीया जल थल ताल ।
रावल कुण बिलमाइ राखो, विरहनि है बेहाल ॥
मीराँ पदा० पृ० १३६.

३. पिया मोहि दरसण दीजै हो ।
बेर बेर मैं टेर हूँ, अहै क्रिया कीजै हो ॥
जेठ महीना जल बिना, पंछी दुखी हुई हो ।
मोर आसाढ़ा कुरलहे, घन चात्रग सोई, हो ॥
सावण में झड़ लागियौ, सखि तीजां खेले, हो ।
भादवे नदिया बहै, दूरी जिन मेले हो ॥
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजां सोई, हो ।
देव काती में पूजहे, मेरे तुम होई, हो ॥
मगसर ठन्ड बहोंनी पड़े, मोहि वेगि सम्हालो हो ।
पोस मही पाला घणा, अब ही तुम म्हालो हो ॥
महा महीं बसंत पंचमी, फागां सब गावैहो ।
फागुण फागा खेल हैं, वणराइ जरावे, हो ॥
चैत चित्त में उपजी, दरसण तुम दीजो, हो ।
बेसाख बणराइ फुलवै, कोइल कूरलीजै, हो ॥
काग उड़ावत दिन गया, बून्दू पिंडत जोसी, हो ।
मीराँ विरहणी व्याकुली, दरसण कब होसी, हो ॥

प्रकृति का प्रत्येक उपादान मिलन का संदेश लेकर आया है। मीरां भी ऐसे समय में प्रिय मिलन की आशा करती है। राजस्थान में गणगौर का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। बरसते हुए सावन की रिमझिम प्रिय के आने की भनक देती है। श्याम के घर आने की प्रशंसा में प्रकृति भी प्रसन्न है। प्रिय के इस मिलन बेला के समय मीराँ बादलों को जल भर कर आने का निमन्त्रण देती है।[१]

मानव अपने हृदयगत भावनाओं का साम्य प्रकृति में देखता है। प्रसन्नता के समय प्रकृति उसी के साथ प्रसन्न दिखाई देती। वियोग के समय वही प्रकृति वेदना को तीव्रतम कर देती है। वे सभी संयोग के माध्यम से वियोग की भावना को उभारते हैं।

---

१. दादर मोर पपीहा बोल्यां, कोइल मधुरां साज।
उमग्यां इन्द्र चहूँ दिस बरसां दामण छोडयां लाज॥
धरती रूप नवांनवों धर्‌या इन्द्र मिलण रे काज।

मीराँ पदावली पृष्ठ १४४.

(अ) रे सांवलिया म्हारे, आज रंगीली गणगोर, छै जी।
काली पीली बदली में बिजली चमके, मेघ घठा घनघोर, छै जी॥

मीराँ पदा० पृ० १४४.

(ब) बरसां री बदरिया सावन री, सावण मण भावन री।
सावन मां उमंग्यो म्हारो मण री, भणक सुणा हरि आवन की॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बेला मंगल गावण री॥

मीरां पदा० पृ० १४५.

(स) सावण दे रह्यां जोरा रे, घर आयो जी श्याम गोरा रे—

मीराँ पदा० पृ० १४५.

(द) बादला रे थे जल भरया आज्यो।
झर झर बूंदा बरसां आली कोयल सबद सुनाज्यो॥
गाज्यां बाज्यां पवन मधुरायो, अम्बर बदरां दाज्यो।

मीराँ पद० १४५.

मीराँ के पदों प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी पद कम मात्रा में मिलते हैं। प्रकृति-चित्रण संबन्धी ये पद किसी एक निश्चित समय में नहीं लिखे गये। मीराँ का उद्देश्य प्रकृति-चित्रण नहीं था पर मानव-स्वभाव के नाते पद रचना करते हुए पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति के दर्शन होते है। वियोग के समय प्रकृति के प्रति मीराँ से बहुत कुछ कहा है। मीराँ के युग बारहमासा का प्रचलन बहुत अधिक मात्रा में था और इस सम्बन्ध का एक पद हमें मीराँ के साहित्य में मिलता है। मीराँ के पदों में प्राप्त प्रकृति-चित्रण आन्तरिक भावनाओं का सम्बल पाकर और भी निखर उठा है।

———

१२

मीराँ के साहित्य में रहस्यवाद

उषा की प्रथम किरण के साथ ही साथ मानव ने अपनी आंखें खोली तो उसने अपने आपको प्रकृति के मध्य पाया। प्रकृति एवं जीवन की विविधताओं को देखकर मानव हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वह अन्नत सत्ता कौनसी है, जिसने इस विश्व का निर्माण किया है और संचालन करती जा रही है? उस वस्तु को देखने और समझने की भावना ने रहस्य को जन्म दिया। इस रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न जितना ही किया गया, वह उतना ही उलझता गया। मानव की आत्मा कहने लगी—

हे अनन्त रमणीय कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो, मार बिचार न सह सकता।।

कामायनी-प्रसाद.

परन्तु मानव का प्रत्येक प्रयत्न आगे नवीन सत्य को देखता है और आगे क्या है? इसके जानने की भावना मानव को अज्ञात के प्रति और भी अधिक उत्सुक करती रहती है।

अज्ञात सत्ता को देखने, पाने और समझने की यह भावना ही साहित्य में रहस्यवाद कहलाती है। रहस्यवाद काव्य की एक विशेष चिन्तन धारा को सूचित करता है। रहस्यवाद शब्द की विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाएं दी हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाओं का हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

१. **जयशंकर प्रसाद**—काव्य में आत्मा को संकल्पात्मक अनुभूति को मुख्य धारा का नाम रहस्यवाद है। संकल्पात्मक अनुभूति से अभिप्राय है आत्मा की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय को उनके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है।

२. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**—साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

३. **डा० रामकुमार वर्मा**—रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहता है और वही संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अन्तर नहीं रह जाता।

४. **डा० गोविन्द त्रिगुणायत**— जब साधक भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतिओं को वाणी के द्वारा शब्दमय चित्रों में संजोकर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के मूल में आत्मा और परमात्मा के संबंधों की व्याख्या है। आत्मा उस ब्रह्म को देखना चाहती है और माया की सीमाओं को तोड़कर अंत में आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। रहस्यवादी चिन्तन के विकास के प्रमुख तीन स्तर हैं—

१. आत्मा की परमतत्व के प्रति जिज्ञासा, किसी गुरू अथवा परिस्थिति द्वारा परम तत्व को जानने की प्रेरणा, ब्रह्म की झलक !
२. द्वितीय अवस्था में आत्मा को परमत्व की झलक तो मिल जाती है परन्तु वह क्षण भर की झलक आत्मा को चिर-विरह के लिए छोड़ देती है । आत्मा विरह साधना करती रहती है। आत्मा अब उसे जान तो लेती है परन्तु व्यक्त नहीं कर सकती।
३. तृतीय अवस्था में साधक पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त कर ब्रह्म में लीन होने की स्थिति में आ जाता है। यह अवस्था ऐसी होती है जब आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता।

साधारण तथा रहस्यवादी भावना इसी प्रकार विकास की ओर अग्रसर होती रहती है।

ब्रह्म और जीव के सम्बन्धों को लेकर हर युग में मानव चिन्तन करता रहा है। ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध किस रूप में है ? उनके बीच में क्या भेद है ? और ऐसी कौनसी अवस्था आती है जब आत्मा और परमात्मा में भेद ही नहीं रह जाता है। इन विचारधाराओं की पृष्ठभूमि पर विविध वादों का प्रचलन हो गया है। इन सभी सिद्धान्तों के मूल में आत्मा और परमात्मा के संबंधों की चर्चा है। मीराँ के पदों में भी रहस्यवादी भावना की झलक मिलती है।

मीराँबाई द्वारा अपनायी गई साधना इसी कारण रहस्यमयी भावनाओं से भी

ओतप्रोत है। और अनेक पदों में हमें रहस्यवाद की भी कुछ झलक दिखलाई पड़ जाती है।"[1] मीराँ कृष्ण से प्रेम करती है जो प्रेम और सौन्दर्य का अक्षय भंडार ब्रह्म ही है। मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की है। उन्हें अपने नारीत्व का पूर्ण ज्ञान है। वे कबीर की तरह अपने को भी कृष्ण की पत्नि और जनम-जनम की दासी मानती है।

मीराँ को इस लोक की नश्वरता का स्पष्ट भान हैं वे कहती है कि—

१. **भज मन चरण कँवल अविनासी।**
जे ताइ दीसे धरण गगन बिच, ते ताई सब उठ जासी॥

२. **नहिं ऐसो जनम बारम्बार।**
का जानूं कछु पुण्य प्रगटे मनुसा अवतारा॥

३. **चंदा जायेगा सूरज जायेगा, जायेगी धरणि अकासी।**

इस संसार में जो कुछ दिखलाई पडता है वह नश्वर है। मीराँ अपनी आशावादी भावना के साथ प्रियतम से मिलने के लिये आतुर है। मीराँ जन्म जन्मान्तरों के सम्बन्धो का स्मरण दिलाती है। मीरां को कृष्ण के नाम से प्रेम है। यह नाम का नाता मीराँ को अलौकिक पिया की याद दिलाता रहता है। कबीर ने भी एक जगह लिखा है कि "नाम वियोगी न जिए तो बादर होय" यह मतवाला पन और तन्मयता हमें मीराँ के जीवन और काव्य मे मिलती है। वह कृष्ण की दिवानी बनकर उसे इस विश्व में ढूँढने के लिए निकल पड़ती है।

"मीराँ जिहि जिहि विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजे हो" के आधार पर विविध कष्टो को झेलने के लिये प्रस्तुत है। मीराँ तो कृष्ण के सगुण और निर्गुण दोनो रूपों को स्वीकार करती है। वे प्रिय दर्शन के लिए व्याकुल हैं।

दरशण कारण भई बावरी, विरह विथा तन थेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी, दूगी नग्र बिच फेरी।

मीराँ प्रिय-मिलन के लिये विरह साधना की ओर अग्रसर होती है। मीराँ की वेदना, तड़फन और व्याकुलता आत्मा की परमात्मा से मिलन की बेचैनी है। "प्रेम सौन्दर्य पर ब्रह्म से विलग हुई आत्मा की विरह वेदना है खुमारी की तीव्रता अनुभूति की तन्मयता के साथ मीराँ की कुरी क्रँदन में अपने चरम उत्कर्ष पर मिलती है।[2]

मीराँ तो प्रभु दर्शन की प्यासी है। वह प्रभु की दासी बनकर रहना चाहती

---

१. मीराँबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी पृ ४०
२. जनम जोगिण मीराँ मीराँ-स्मृति ग्रन्थ शंभु प्रसाद बहुगुणा पृ० २७

है जिससे दर्शनों का सौभाग्य तो प्राप्त हो सके। मीराँ के हृदय में आशा है कि एक दिन मैं पीव के पलंगा जा पोढ़ूंगी और इसी भावना को लेकर वे विविध साधनाएँ भी करती हैं। मीराँ कठिन से कठिन साधना के लिये भी प्रस्तुत है—

१, त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ से झांकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सूरत जमाऊँ सुख की सेज विछाऊँ री॥
२. आरति तेरी अन्तिर मेरे आवो अपनी जानी—
३. गली तो चारों बंद हुई. मैं हरि से मिलुं कैसे जाई—

मीराँ की साधना सफल होने लगी। उन्हें अपने और प्रिय के बीच कोई अन्तर नहीं दिखाई देता—

१. तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सुरज धामा।

इस प्रकार मीराँ आत्मा और परमात्मा के बीच भेद नहीं मानतीं और एक दिन आत्मा का परमात्मा से मिलन हो जाता है।

म्हाँ गिरधर रंग राती, सैयाँ म्हाँ।
पचरंग चोला पहरया सखी म्हाँ, झिरमिटि खेलन जाती।
वाँ झरमिट माँ मिल्यो साँवरों देखों तन मण राती।

"वे पचरंग का चोला एवं पाँच तत्वों द्वारा निर्मित शरीर धारण कर सके झिरमिट व झुरमुट मारने का खेल जिसमें सारा शरीर इस प्रकार ढक लेते हैं जिससे जल्दी पहिचान न हो सके खेला करती थीं कि अकस्मात उस साँवरो वा प्रियतम से भेंट हो गई उनके गले लग गई। तात्पर्य यह कि कर्मानुसार प्राप्त मानव शरीर का आवरण धारण किए हुए जीवात्मा रूप से वे अपना जीवनयापन कर रहीं थीं कि किसी समय उन्हें, इस दैनिक व्यवहार के अतगत ही, परमात्मा के साथ अपने तादात्म्य का बोध हो गया। वे उक्त काल्पनिक आवरण की भावना का परित्याग कर उसके साथ एक रूप हो गयीं।[२]

मीराँ ने निर्गुण सम्प्रदाय की विशिष्ट शब्दावली का भी प्रयोग किया है जैसे सूरत, निरत, निरंजन और आरती आदि। सगुण और निर्गुण दोनों धाराएं प्रिय के मिलन की माध्यम मात्र थी। "मीराँ का रहस्यवाद साम्प्रदायिक नहीं, वह स्वाभाविक था, रूढ़िगत नहीं स्वच्छन्द था। मीराँ नारी थी, उन्हे अपने नारीत्व का पूर्ण ज्ञान और अभिमान था, उन्होंने अन्य वैष्णव भक्तों के समान जीव नारी का

१. मीराँबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४१

अभिनय नहीं किया, वरन स्वयं अपने गिरधर नागर की दासी बन गई और अपनी सच्ची प्रेम साधना की स्पष्ट और उत्कृष्ट व्यंजना की।"[1]

मीराँ की रहस्य भावना हृदय जनित अनुभूति की प्रेरणा थी। मीराँ प्रेम मार्ग के द्वारा प्रिय तक पहुँचने के लिये प्रयत्नशील रहीं। मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की थी। "इनकी भक्ति के कारण इनका रहस्यवाद शुष्क तथा नीरस नहीं बना। इसमें कबीर की पहुँच तथा जायसी का प्रेमाभिनय है।"[2]

---

१. मीराँबाई – डा० श्रीकृष्णलाल. पृ० १६३

२. सुकवि समीक्षा – डा० दशरथ ओझा,

१३

मीराँ का काव्य सौन्दर्य

काव्य अपने सीमित रूप में कविता का पर्याय कहा जाता है। काव्य और आत्मा के सम्बन्ध में विद्वानों मे बहुत अधिक मत-भेद रहा है। काव्य की आत्मा के विषय को लेकर तो विभिन्न सम्प्रदाय भी चल पड़े हैं। सभी सम्प्रदाय की विचार-धाराओं का समन्वय करके हम सत्य तक पहुंच सकते हैं। जिस प्रकार मनुष्य की आत्मा और शरीर को अलग नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार काव्य की आत्मा और उसके शरीर का गहरा सबंध है। काव्य की आत्मा रस है। विश्वनाथ ने अपनी पुस्तक "साहित्य दर्शन" में काव्यं रसात्मकं काव्यं कहकर रस को ही प्रधानता दी है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं। आत्मा और शरीर दोनों को मिलाने से पूर्ण काव्य हमारे सामने आता है। काव्य की आत्मा को हम भाव पक्ष और काव्य के शरीर को हम कला पक्ष कह सकते हैं। भावपक्ष और कला पक्ष दोनों के समन्वय से काव्य का निर्माण होता है।

मीराँ के साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करने के लिये उसके भाव पक्ष और कलापक्ष को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना होगा। मीराँ के पदों में भावपक्ष की प्रधानता रही है पर कला पक्ष के सौन्दर्य की भी कमी नही है।

भावपक्ष—१ रस—काव्य का सबसे महत्वपूर्ण अंग भावपक्ष है। भाव-पक्ष में भी रस की विशेष महत्ता है अतः हम मीराँ के पदों में प्राप्त रस संबंधो विचारधारा को प्रस्तुत करेंगे—

शृंगार को रस राज कहा जाता है। शृंगार का निरूपण साहित्य में दो प्रकार से हुआ है। एक को हम लौकिक निरूपण और दूसरे को अलौकिक निरूपण कहेंगे। अलौकिक शृगार का संबंध ईश्वर से होने के कारण उसे आध्यात्मिक शृंगार भी कहा जाता है। शृंगार रस के भी दो प्रमुख भेद है—विप्रलम्भ शृंगार। और

संयोग शृंगार। शृंगार के दोनों रूपों का चित्रण हमें साहित्य में प्राप्त होता है पर संयोग शृंगार अधिकांशतः वियोग शृंगार की ही प्रधानता है।

मीराँ अपने अलौकिक पिया कृष्ण से प्रेम करती थीं। वह प्रतिक्षण उसी का स्मरण करती रहतीं थी। कल्पना की प्रधानता के कारण मीराँ का प्रियतम मानस लोक में उसके साथ विविध लीलाएँ भी करता था। अपने नटनागर के साथ संयोग की वेला मीराँ के जीवन में बहुत कम आई। मीराँ अपने प्रियतम के साथ जब भी मिली उसी के रंग में रँग गई वह अपने प्रियतम को आँखों के सामने ही रखना चाहतीं है, पर जब वह छोड़कर चलने लगता है तो उसके पाँवों में पड़कर रुकने की प्रार्थना करती है।

मीराँ के पदों में संयोग की अपेक्षा वियोग की प्रधानता है। मीराँ का सम्पूर्ण जीवन विरह, वेदना की सजीव कहानी है। अपने प्रियतम के न मिलने के कारण मीराँ को सारा जीवन और जगत तथ्यहीन सा प्रतीत होने लगता है। वे अपने प्रियतम की ढूँढ़ने को नगर के बीच में फेरी देती है पर प्रिय नहीं मिल पाता। विरह की वेदना को सीने से लगाकर वे प्रिय की प्रतीक्षा करती है। वेदना की तीव्रता घनीभूत हो उठती हैं। तन विरह की ज्वाला में जलकर क्षीण होता जा रहा है और मन, तन की सीमाओ को छोड़कर मुक्त होना चाहता है। मीराँ कहती हैं कि "पींड माँसू प्राण पापी निकस क्यूं ना जात" इस प्रकार के अपने प्राणों को भी प्रिय के वियोग में स्थिर देखकर धिक्कारती हैं। वे किसी भी मार्ग द्वारा अपने कृष्ण के पास जाना चाहती है।

मीराँ के पदों में वियोग का वर्णन बहुत ही उच्च श्रेणी का हुआ है। मीराँ का वियोग काव्य लिखने के उद्देश्य से नहीं लिखा गया है, उसमें जीवन की यथार्थता है। मीराँ की अपनी वेदना काव्य का सहारा पाकर प्रगट हुई है। वेदना आत्मानुभूति का पुट और नारीत्व का संयोग पाकर सजीव हो उठी है। काव्य में प्रयुक्त विरह की समस्त दशाओं का भी प्रयोग में मीराँ काव्य में हमे मिलता है।

भक्ति रस और शृंगार रस के साथ ही साथ मीराँ के पदों में शान्त रस का प्रयोग भी हुआ है। इस लौकिक जीवन की नश्वरता के सम्बन्ध में मीराँ ने अनेक पदों में चर्चा की है। वे इस जीवन और जगत की अनित्यता के साथ ही साथ ईश्वर के स्मरण की ओर भी संकेत करती है। लीला पदों में अद्भुतरस की झलक भी मिलती है।

२. **कल्पना और सौंदर्य की भावना**—हडसन ने काव्य में जीवन की

व्याख्या, कल्पना और मनोवेग तीनों का समन्वय किया है। हैजलिट् ने काव्य को कल्पना की भाषा कहा है। एडगर एलन ने काव्य को सौन्दर्य की संगीतात्मक सृष्टि कहा है ! मीरॉं के पदों में कल्पना और सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। मीराँ की समस्त भावनाओं का केन्द्र बिन्दु कृष्ण है। वह कल्पना का सहारा लेकर उसके रूप, रंग और सौन्दर्य की चर्चा करती है। मीराँ का गुण सौन्दर्य का अवाह सागर है। वह कल्पना के द्वारा मानस-लोक में प्रियतम से मिलती रहती है। कल्पना की कोमलता और सौन्दर्य की अनन्त राशि के पीछे उनके पूर्वजन्म के संस्कार और बुद्धि की सुव्यवस्थित आधार भूमि है। बुद्धि भावनाओं के माध्यम से ही अपने रूप को प्रगट करती है। कल्पना और सौन्दर्य की भावना का मीराँ के पदों में सुन्दर रूप से प्रयोग किया गया है।

मीराँ के पदों में भावपक्ष की प्रधानता है। उनके जीवन और व्यक्तित्व की झलक सारे काव्य में दिखाई देती है। मीराँ के पदों में भावों की तीव्रता, रस की मादकता, कल्पना की कोमलता, सौन्दर्य की स्निग्धता और बुद्धि की परिपक्वता सभी एक साथ हैं। मीराँ के भावपक्ष ने एक सबल आधार भूमि पर अपने रूप का निर्माण किया है और उस कसौटी में वह पूर्ण रूप से खरा उतरता है।

१४

मीराँ का कला पक्ष

कलापक्ष—आत्माभिव्यक्ति मानव की सहज और स्वाभाविक प्रकृति है। वह जो कुछ भी सोचता है, समझता है और अनुभव करता है उसे दूसरे के सामने व्यक्त करने से उसके हृदय का भार हल्का हो जाता है। आत्मा को शांति और आनन्द मिलता है। भावों की अभिव्यक्ति के अनेक साधन हैं पर उनमें सुन्दरतम साधन भाषा है। भाषा के माध्यम से व्यक्ति अपने भावों को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। भाषा को भावों का परिधान भी कहा गया है। काव्य की आत्मा भाव है और भाषा उसका शरीर। काव्य की आत्मा को हम भावपक्ष कहते हैं और काव्य के बहिरंग को कलापक्ष। कलापक्ष भावों के सौन्दर्य को निखार देता है। भाषा, शैली, छंद और अलंकार आदि काव्य के बाह्य-सौन्दर्य के प्रमुख उपादान है। उपर्युक्त प्रमुख तत्वों के आधार पर हम मीराँ के कलापक्ष की विवेचना करेंगे—

भाषा और शैली—मीराँ का जीवन अपनी विशेष मान्यताओं को लेकर आगे बढ़ा। जीवन मे जो कुछ भी उसे पसन्द आया उसे अपना लिया। मीरा ने किसी एक भाषा विशेष का प्रयोग नहीं किया है। जिस भाषा के शब्द पसन्द आये उन्हें उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया। मीराँ की स्वच्छन्द प्रकृति के दर्शन हमें यहाँ पर भी होते हैं। मीराँ के जीवन के प्रमुख तीन क्रीड़ा-स्थल रहे हैं। पहले वह राजस्थान में रही, फिर वृन्दावन में और अन्त में जाकर द्वारिका में मृत्यु पर्यन्त रही। उपर्युक्त तीनों प्रान्तों की प्रमुख भाषायें क्रमशः राजस्थानी, ब्रजभाषा और गुजराती है। मीराँ के पदों में तीनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। जैसे—

१. राजस्थानी—

बाली घडाबुं बिट्ठल बर केरी, हार हरी नो मारे है ये रे।
चित्र माला चतरभुज चूड़लो, शिद सोनी घरे जाइये रे ॥
झांझरिया जीवन केरा, कृष्णा जी कड़ला ने कावी रे।

(ii) थें तो पलक उघाड़ो दीननाथ. में हाजिर नारि कब की खड़ी ॥
साजनियां दुसमण होव बैठयां, सबने लगूं कड़ी।

२. ब्रजभाषा—

सखी री लाज वैरण भई।
श्री लाल गोपाल के संग काहे नाहीं गई ॥
कठिन कुर अक्रुर आयो साजि रथ कहें नई।
रथ चढ़ाय गोपाल लेगो, हाथ मींत रही।
कठिन छाती श्याम विछुरत, विरह ते तन गई ॥
दासि मीरां लाल गिरधर, विखर क्यूं न गई।

३. गुजराती—

१. जल भरवा केम जाऊं, कानो मारी केडे पड़यो रे।
साव सेनानो मारो घाट घड़लो बाला, ऊंटनीए रतन जडावुं ॥
मार गयाँ वालो पाणी लों माँगे, सहीयर देखतां केम पाऊं।
नाथ जी मारा निर्लज थई बैठा वाला, हुँ निर्लज केम थऊं ॥
बाई मीरां के प्रभु गिरधर नागर वाला, हरि चरणे ध्यान धराऊं।

२. प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुनामाँ भरबाँ गयाँता हती नागर माथे हेमनी रे ॥[1]

४. पंजाबी और खड़ी बोली का भी प्रभाव दिखाई देता है—

१. हो कागाँ किन गूंथी जुल्फा कारियाँ।

२. जसुमति के दुवारवाँ ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरूवा हम से अरूझाय ॥

३. लागी सो ही जाणे कठण लगण दी पीर—

मीराँ के पदों में तीनों भाषाओं के पद मिलते हैं।[2] गुजराती पदों का अलग

---

१. मीराँ-माधुरी : ब्रजरत्नदास पृ० ८८ पद सं० ३५१.

२. मीराँबाई की भाषा में अधिकांश में राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती अथवा कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ी बोली एवं पुरबी तक का न्यूनाधिक सम्मिश्रण है। मीराँबाई पदावली पृ० ६०.

अस्तित्व होने के कारण मीराँ को गुजराती कवयित्री भी माना गया है। मीराँ के भाषा और पदों के प्रयोग में स्वच्छंदता है । मीराँ की भाषा में सहज स्वाभाविक प्रवाह है, वाह्य आंडबर नहीं। मीराँ की भाषा और भावों में भी गहरा सम्वन्ध है। भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है। मीरां की भाषा में माधुर्य और संगीतात्मकता का समन्वय है। "मीरॉबाई के पदों की भाषा शैली भी अधिकतर सीधी-साधी, सरल एवं चलती सी रही। अपने सुन्दर भावों के कारण माधुर्य पूर्ण होने से वे सर्वसाधारण द्वारा, वहुधा अपनाये जाते रहे हैं।"[1] मीरॉ के पदों में लोक प्रचलित शब्द और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। मीराँ के पदों की पूर्ण प्रमाणिकता के अभाव में भाषा का विषय विवादास्पद ही है। मीराँ के प्राप्त प्रमाणित पदों के आधार पर ही भाषा संबन्धी विवेचना की गई है। मीरॉ का उद्देश्य काव्य का सृजन नहीं था अतः उन्होंने कलापक्ष को निखारने का शास्त्रीय प्रयत्न नहीं किया। फिर भी भावपक्ष की प्रवलता के साथ ही साथ कलापक्ष भी साहित्यिक सौन्दर्य को लिये हुए है। "जायसी, कबीर तथा अन्य संत कवियों की भाँति मीराँबाई भी परिष्कृत कथा पूर्ण साहित्यिक भाषा नहीं लिख सकतीं थीं, ऐसी बात नहीं है, वरन् उसके विपरीत कुछ पदों में मीराँ ने एसी परिष्कृत तथा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है जो पिछले खेवे के कवियों के लिए आदर्श मानी जा सकती है।"[2]

मीराँ की भाषा में राजस्थानी, ब्रजभाषा और गुजराती के साथ ही साथ पंजाबी और खड़ी बोली का भी कुछ प्रभाव दिखाई देता है। मीराँ की भाषा में सरलता, प्रवाह, माधुर्य, स्वाभाविकता और संगीतात्मकता होने के कारण मीराँ के पद बहुत अधिक लोक प्रिय हैं।

मीरॉ की भाषा गीति-काव्य से अनुकूल है। मीराँ की प्राप्त रचनाओ में सर्वाधिक प्रमाणिकता उनके पदों की है। मीराँ की प्राप्त सामग्री गीति-साहित्य के अन्तर्गत आती है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "गीति-काव्य के अनुसार मीरॉ कविता का आदर्श है।"[3] मीराँ की शैली में उसका सारा व्यक्तित्व झलकता है। व्यक्तित्व और कृतित्व का बहुत गहरा संबंध है। मरे साहब तो यहाँ तक कहते हैं

१. मीराँबाई की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी पृ० ६०.

२. मीराँबाई : डा० श्री कृष्णलाल पृ० १६८.

३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा पृ० ८३३.

कि कलाकार के व्यक्तित्व और कृतित्व में भेद होना ही नहीं चाहिये ।[1] शैली के द्वारा व्यक्ति अपने आप को व्यक्त करता है । मीरां की वेदना, तूफान, तड़फन और भावनाएँ गीति का सहारा पाकर सजीव हो उठी हैं । मीरां की शैली में उनकी अपनी विशेषता है जो अन्य साहित्यकारों में बहुत कम पाई जाती है ।

अलंकार छंद और विधान:—अलंकार काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने में सहयोगी होते हैं । काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है । मीरां के पदों में अलंकारों का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है—

रूपक—१. अंसुवा जल सींच सीच प्रेम वेलि बूयां ।
२. यों ससार चहर री बाजी, साम पड्यां उठ जासी ।।
३. भौं समंद अपार देखां अगम ओखीं धार ।
लाल गिरधर तरण तारण वेग करस्यो पार ।।

उत्प्रेक्षा—१. कुण्डल झलकां, कपोल अपलकां लहराई ।
मीरां तज शरवरज्या, मकर मिलन धाई ।

अत्युक्ति—१. गिणतां गिणतां घंसगया, रेखा आंगलिया की सारी ।

उपमा—१. पानां ज्यूं पीली पडी रे लोग कह्या पिड़वाय ।
ज्यूं चातक घड़कूं रहे, मछली ज्यूं पाणी हो ।
मीरां व्याकुल विरहणी, सुध बुध बिसराणी हो ।।

अनुप्रास—१. सूनों गांव देश सब सूनों, सूनी सेज अटारी ।
२. मोर मुगट माथ्यां तिलक विराज्यां कुण्डल अलकांकारी ।

मीरां के पदों में अलंकार स्वाभावत: ही आ गए हैं । इसके लिये मीरां इतनी प्रयत्न शील नहीं थी । पर जीवन के अनुभव और सौन्दर्योपासना की भावना वाली नारी के पदों में अनायास ही अलंकार आजायें तो कोई आश्चर्य की वस्तु नहीं ।

जहाँ तक छन्दों का प्रयत्न है "पदावली के अन्तर्गत आये हुए पदों को ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि मानो उनकी रचना पिंगल के नियमादि को दृष्टि में रखकर नहीं की गई थी अथवा उनके विशेष रूप से गाने योग्य होने के कारण, पीछे से उनमें, संगीत की सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन कर दिये गए

---

१. It (Highest style) is a combination of the maximum of personality with the maximum of Impersonality, on the hand it is a concentration of peculiar and personal emotion, on the other hand it is a complete Projection of this personal emotional in to the created things, The problem of style by, J.M. murry p. 35

है ।[1] मीराँ के पदों के रूप परिवर्तन और संगीतात्मकता के कारण छन्दों के प्रयोग में कहीं-कहीं दोष भी आ गए हैं फिर भी छंदों का प्रयोग कई जगह मिलता है । मीराँ ने अधिकांशतः प्रचलित छन्दों का ही प्रयोग किया है । उनमें सार छन्द, विष्णुपद, दोहा, समान सवैया, तारक और कुण्डल छन्द प्रमुख है ।

सरसी छन्द—

दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोर छे जी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणों में म्हारो जोर छे जी ॥

नाटक छन्द—

उड़त गुलाल लाल भये बादल, पिचकारिन की लगी झरी री ।
चोवा चन्दन और अगरचा, केसर गागर भरी धरी री ॥

दोहा—

झूठा मानक मोतिया री, झुठी जगमग जोति ।
झूठा सब आभूषण री, साँचो पिया जी री पोति ॥

विष्णुपद—

राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटे रे ।
जनम जनम के खत जु पुराने, नाम हि लेत फटे रे ,।

परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार "मीराँ ने कम से कम १५ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है । छन्दों में रूप परिवर्वन और संगीतात्मकता के कारण कहीं-कहीं पर दोष आ गया है । कही-कहीं पर लय के लिये री, रे आदि का भी प्रयोग किया है । जिससे मात्राओं के क्रम में वाधा आ जाती है ।

मीराँ के पदों में मुहावरों का प्रयोग भी कहीं-कहीं देखने में आता है जैसे—

१. **माई री म्हाँ लिवो गोविन्दों मोल ।**

२. **करके श्रृङ्गार पलंग पर बैठी रोम रोम रस भीना ।**
चोली वेरे बंद तरवन लागे, श्याम भये परवीना ॥

मीराँ की भाषा में प्रवाह, सरलता और मधुरता है । शैली की कोमलता और आत्मानुभूति की प्रधानता के साथ ही साथ छन्द, अलंकार और मुहावरों का भी यथा स्थान उपयोग किया गया है । शब्दों को कहीं-कहीं तोड़ मरोड़ भी दिया गया है । राजस्थानी, ब्रजभाषा, गुजराती और कहीं-कहीं पर अन्य भाषा के शब्दों को भी लिया गया है । मीराँ में जहाँ पर भावपक्ष की प्रवलता है वहीं कलापक्ष का सौन्दर्य अनुभूति की अभिव्यक्ति मे सहायक सिद्ध होता है । दोनों के समन्वय से काव्य का सौन्दर्य अपने उज्वल रूप में हमारे सामने आता है ।

---

१. मीराँ की पदावली : परशुराम चतुर्वेदी पृ० ५७.

१५

मीराँ के साहित्य में सांस्कृतिक चित्रण

संस्कृति उस सम्मुचय का नाम है जिसमे ज्ञान, विश्वास, कला, नीति, विधि, रीति, रिवाज तथा अन्य सभी क्षमताओ और आदतो का समावेश रहता है जिसे मनुष्य समाज के सदस्य के रूप मे अपनाता है।

—ई० बी० टायलर

मानब समाज का निर्माण करता है और समाज की पृष्ठभूमि पर संस्कृति का रूप निखरता है। संस्कृति का यह रूप किसी एक युग विशेष में नहीं निर्मित होता है अपितु समाज के बौद्धिक विकास के साथ पनपता रहता है। संस्कृति का मानव, समाज और साहित्य से बहुत गहरा संबन्ध है। साहित्यकार जब अपने साहित्य का सृजन करता है तो उसके युग की प्रचलित सांस्कृतिक परम्पराएँ अनायास ही आ जाती हैं। साहित्यकार समाज का सक्रिय सदस्य होता है। समाज की व्यवस्था, रीति-रिवाज, भाषा और लोक चिन्तन का प्रभाव साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मीराँ के साहित्य का अध्ययन करने से उसमें सांस्कृतिक चिन्तन की विविध झांकियां स्पष्ट दिखाई देती हैं। हम मीराँ के पदो मे प्राप्त सांस्कृतिक चिन्तन को इस रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

राजकुल की परम्पराएँ और मान्यताएँ—उस समय राज परिवारों में रूढ़ियां अपनी नीवें बहुत गहरी जमा चुकी थीं। राजकुल की मर्यादा और व्यवस्था बहुत अधिक कठोर थी। राजघरानों के ऊँचे प्रसादों में विलास की समस्त सामग्री उपलब्ध रहती थी। पहरे की व्यवस्था और सैन्य संगठन भी बहुत कुशलता से किया जाता था। राजा के सबसे बड़े लड़के को कुंवर पाटवी कहते थे और वही राज्य का उत्तराधिकारी होता था। राजा का विरोध करने वाले को या तो मार दिया जाता

था या फिर राज्य की सीमा के बाहर निकाल दिया जाता था । राजघराने में धर्म की प्रतिष्ठा थी और जोशी धर्म एवं शुभ कार्यों को करने की प्रेरणा दिया करते थे। धर्म के साथ ही विलासिता का पुट भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । युग की परिस्थितियों ने नारी को एक समस्या बना दिया था । राजकुल में पर्दा का प्रचलन था और उन्हें साधारण समाज से सम्बन्ध रखने की आज्ञा देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता । पुरुष के लिये उसका वीरत्व ही आदरणीय था । राज्य की व्यवस्था में सहयोग देने के लिये कामदारों की नियुक्ति की जाती थी । मीराँ के पदों में प्रचलित व्यवस्था की चर्चा कहीं-कहीं पर मिलती है—

१. महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थाँरो बसनो शहर ।

२. कबकी ठाड़ी पंथ निहारू अपने भवन खड़ी ।

३. कामदारा सूं काम ण महारे, जाबां म्हाँ दरबरा री ।

४. पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो, तालो दियो जड़ाय ।
राजा रूटयाँ नगरी त्यागाँ, हरि रूठयाँ कहाँ जाणा ।।

५. राणोजी रूठयो दाँरो देस रखासी ।

१. जोसीड़ा णे लाल बधाँया आस्याँ म्हारो स्याम ।

२. वड़ा घरा थे जनम लियो है नाचो दे दे तारी ।।

उपर्युक्त पदों में राज्य परिवार की परम्पराएँ और मान्यताओं का उल्लेख आया है । मीरां के समय में मुसलमान धर्म का प्रभाव भी बहुत तेजी से फैल रहा था । राजपूतों के लिए इस समय बहुत अधिक संकट एवं संघर्षों का था । युद्ध में तोपों का प्रारम्भ हो चुका था ।

तोप खाना पेशखाना उतरा है वागां आय । मीराँ-माधुरी पृ० १७ । साथ ही तीर और तलवार का भी उतना ही महत्व था । ढाल और कवच उनकी रक्षा के लिये काम आते थे—

क्या बख्तर का पहनना रे क्या ढालों की ओट ।

परन्तु इसकी विशद चर्चा हमें मीराँ के पदों मे नहीं मिलती है—

समाज में प्रचलित विचारधाराएँ—

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकडियाँ तो लाज मेरे छै ।
हरि मंदिर जाताँ पावलियाँ रे दूखे, धिर आवे सारो गाम रे ।।
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ीने जाय रे, मुकी ने घर ना काम रे ।
भांड भवैया गणकाँ नृत्याँ करता, वैसी रहे चारों जाम रे ।।
सत्संग करताँ लाँछन लागे, चर्चा छे वाधुं रे ।
मीराँना प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल चित्त हाम रे ।।

मीराँ० पदावली

उयुर्पक्त एक ही पद में मीराँ ने समाज की यथार्थताओं को स्पष्ट कर दिया है। जनता में धर्म के प्रति बनावटी आस्था थी। आपसी विरोध और संघर्ष की समाज में प्रधानता थी। विलास की छाया सारे समाज पर पड़ चुकी थी। राज-परिवार में विलासिता अपनी चरमसीमा पर थी। कला अपने सौन्दर्य साधना और यौवन को प्रसन्न करने के लिये नृत्य और संगीत का आयोजन किया जाता था। उत्सवों में वैश्याओं का नृत्य और भाड़ो का गान तो साधारण वस्तु मात्र थी। इस प्रकार की परम्पराएँ तो आज भी किसी न किसी सीमा तक मिल जाती है। वाजीगर के तमासे और कठपुतलियों के खेल भी बहुत अधिक थे। समाज में धर्म की भावना को लेकर बहुत अधिक संघर्ष चल रहा था। ऊंच नीच की भावना बहुत अधिक मात्रा में थी। नारी की अपेक्षा पुरुषों को पूर्ण स्वच्छन्दता थी।

समाज में सवारी के लिये बैलगाड़ी, ऊंट और घोड़ों का ही अधिक मात्रा में प्रचलन था। राजघरानों में रथ का भी प्रयोग होता था। राजा की सवारी के लिये हाथी भी कई बार काम में लाया जाता था—

१. **रथाँ बैल जुताइ के, ऊँटा कसियो भार।**
२. **राणो साँडयो मोकल्यो, जाज्यो एके दौंड़।**
३. **हाथी घोड़ा बही घाण माया केर न पार।**
मोराँ रथ वहल सिगार के ऊँटा कसिया भार॥

मीराँ के पदों में सवारियों के साथ ही साथ फौज और उसकी व्यवस्था का भी परोक्ष रूप में वर्णन आता है।

समाज में नारी का स्थान—

छैल विराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ
ताके सग सिधारतॉं है, भला न कहसी कोइ।
वर हीणो अपणो भलो है, कोढ़ी कुष्टी कोय।
जाके संग सीधारता है भला रहे सब लोइ॥

नारी के लिए उसका पति ही परमेश्वर होता है और उसकी सेवा करना नारी का परम धर्म था। पतिव्रत धर्म को नारी के जीवन का आदर्श था। नारी केवल एक पुरुष से ही प्रेम करती थी। वही प्रेम धीरे-धीरे प्रेम साधना के रूप में परिणित हो जाता था। पति के बिना नारी का कोई आस्तित्व ही नहीं समझा जाता था। पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी मृत देह के साथ सती हो जाना नारी अपना परम सौभाग्य समझती थीं। मीरा ने युग में प्रचलित इस सती प्रथा का विरोध किया। नारी के लिये घूँघट होना अनिवार्य समझा जाता था और यह परम्परा

राजस्थान के ग्रामीण जीवन में अभी तक उतने ही स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। मीरां ने भी घूँघट की चर्चा अपने पदों में की है।

घूंघट पट खोल देत, सावरो कन्हाई।
नाचन लागी जब घूंघट कैसो लोक लाज तिणका ज्यूं ।।

नारी का कार्य क्षेत्र साधारणतया घर की सीमा में ही था। नारी बहुत अधिक श्रृंगार प्रिय थी। नारी के महत्वपूर्ण षोडश श्रृंगारों की चर्चा मीरां के पदों में मिलती है—

बाली घड़ावुं विट्ठल कर केरी, हार हरी नो मारे हैये रे।
चित्तमाला चतुर्भुज चुड़लो, शिद सोनी घरे जाइये रे।
झाँझरियाँ जग जीवन केरा, कृष्ण जी कड़ला ने काँबी रे।
वींछियां घूघरा रामनारायण ना अणवट अन्तर जामी रो।
पेटी घडावुं पुरुषोत्तम केरी, त्रीकम नाम नुं तालुं रे।
कूँची घडावुं करुणानन्द केरी, तेमाँ धरेणु मारूं घालुं रे ।।

२. गहणा गाँठी हम सव त्यागा, त्याग्यो कर रो चूड़ो।
काजल टीको हम सब त्यागा, त्याग्यों छै बाँधन जूड़ो ।।
३. गोपी दधि सुनियत हैं कगँनो के भनकार।
४. राती पीली चूनरी ओढ़ो मेंहदी हाथ रसाल ।।
५. चोली केरे बंद तरकन लागे श्याम भए परवीना।
६. केसरी चीर दपराई कों लँहुंगो ऊपर अंगिया भारी ।।
७. कहो कसुमल साड़ी रगाँवा।
८. बिन पाणी उबटनों साँवरों हुई गई धुई सफेद ।।
९. कहो तो मोतियन मांग भरावां।
१०. बिन पाणी उबटनों सांवरो हुई गई धुई सफेद।

मीराँ के उपर्युक्त पदों में श्रृंगार सामग्री की सुन्दर रूप से चर्चा की गई है। काजल, टीका, मांग और मेंहदी का प्रयोग बहुत अधिक प्रचलित था। नारी की प्रिय वेशभूषा ओढ़नी, चूनरी और लंहगा था। चोली का भी प्रचलन था। सौन्दर्य को निखारने के लिये उबटन काम में लाया जाता था। नारी को गहने बहुत अधिक प्रिय थे। बाली, झांझरिया, चुडला, बिछिया, कडला और घूघरा आदि सोने चांदी के विविध गहनों से नारी को मोह था।

समाज में विवाह और रीति-रिवाज—समाज में विवाह की जो परम्पराएं थीं उनकी झलक मीरां के पदों में मिलती है। विवाह के समय विशेष प्रकार के वस्त्र जिनमें पगड़ी साफा और जामा आदि होता था उससे विभूषित होकर दुल्हा

घोड़े पर बैठकर ससुराल जाता था । पगड़ी में रत्नों से जड़ा हुआ शिरपेंच और किलंगी भी लगाई जाती थी—

१. कुसुमल पाग केसरिया जामा फुल हजारी।

२. रतन जडित शिरपेंच कलंगी केसरिया सब साज।

३. माई म्हांने सुपने में परण गया गोपाल।
अंग अंग हल्दी में करी जी सुध भीज्यो गात।
माई म्हांने सुपने में परण गया दीनानाथ।
छप्पन कोट जान पधारे दूलह श्री भगवान॥
सुपने में तोरण बांधियो जी सुपने में आई जान। मीरां-माधुरी पृ० ११

४. सुपणा मां तोरण बंध्या री सुपणमां गह्या हाथ।
सुपणां मां म्हारे परण गया पायां अचल सोहाग॥

विवाह के समय नारी के सौन्दर्य के प्रसाधनों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। हाथों में मेंहदी लगाई जाती थी। हल्दी का प्रयोग भी होना था। स्त्रीयां लोक गीत गाया करती थी—

समाज से नृत्य और संगीत—समाज मे संगीत और नृत्य का बहुत अधिक आदर था। राजघरानों मे भी संगीत और नृत्य की ऊँची शिक्षा दी जाती थी। सगीत शास्त्र का समाज मे बहुत अधिक प्रचार था। विविध राग-रागनियों का प्रयोग होता था। कुछ रागें विशिष्ट भावनाओं की प्रतीक होती है और विशिष्ट समय में ही गाई जाती है। मीराँ के पदों मे भी राग-रागनियों का सुन्दर रूप से प्रयोग किया गया है। मीराँ बाई का मल्हार तो आज भी लोक प्रिय है। पीलू भी मीराँ का प्रिय राग था। नृत्य की विभिन्न शैलियों का प्रचार समाज में था। नृत्य और संगीत में प्रयुक्त विविध वाद्यों का उल्लेख भी मीराँ के पदों में मिलता है—

१. चंग, मृदंग, डफ, महर वाजे वाजै बेनु रसाल—

२. संख, झालिर, झांझा वाजे सदा सुख की रास—

३. बिन करताल पखावज वाजै—

४. जांझ, मृदंग, मुरलिया वाज रही इक तारी—

५. ताल पखावज मिरदंग बाजा—

६. पग घूंघरू बाँध मीराँ नाची रे—

उस समय में समाज में नृत्य और संगीत कला की अच्छी प्रतिष्ठा थी। अन्य कलाएँ भी लोक प्रिय थीं।

समाज में धर्म और दर्शन—समाज में उस समय धर्म का आडंबर बहुत था । ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता थी । राजस्थान में भक्ति की दोनों धाराएँ प्रवाहित हो रही थी । समाज में साधुओं का सम्मान था । सत्संग पर अधिक जोर दिया जा रहा था । प्रभु को प्रसन्न करने के लिये नृत्य और संगीत कला का प्रदर्शन देव-मन्दिर में होता था—

१. भांड गवैया गणिका नृत्या करता: वैसी रहे चारों जाम रे ।

२. कथा कीरतण सुन निसि वासर महाप्रसाद ले प्यांस्याँ ।
सुणि सुनि वचन साघ रा मुख स निरत कराँ और बाँचाँ

धर्म और दर्शन का बहुत गहरा सम्बन्ध है । भारतीय जनता का पूर्व जन्म, पुर्नजन्म, स्वर्ग, नरक और करमगति में अटल विश्वास है । मीराँ के पदों में पूरब जनम का कई जगह उल्लेख आया है । वे कृष्ण-कृष्ण को अपना जन्म-जन्म का साथी मानती हैं । उस समय जनता नरक के भय से पाप करने से घबराती थी । स्वर्ग की कामना हर व्यक्ति करता था । विविध तीर्थ स्थानों के प्रति भी जनता में मोह था । इन विविध आस्थाओं को हम मीराँ के पदों में देख सकते हैं—

१. साधु जननो संग जो करिये, चढ़े तो चौगणो रंग रे ।
साकत जनमनो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे ।।
अठसठ तीरथ संतों ने चरणे, कोटि काशी ने कोटी गंग रे ।
निन्दा करसे नरक कुंड माँ, जासे थासे आंधला अपंग रे ।

२. पूरबला कांई पुन्न खूंटयां माणसा अवतार ।

३. करमगत टारां नहीं टराँ ।

४. पूरब जणम री प्रीत पुरानी, जावा णा गिरधारी ।

५. ले जाती वैकुन्ट में म्हारी नेक व मानी बात ।

मीराँ के पदों मे युग के प्रचलित धार्मिक विचारों को देखा जा सकता है । साधु और संत का समान आदर होता था । चिन्तन शीलसंत समाजमें धर्म के माध्यम द्वारा नैतिकता की शिक्षा दे रहे थे । धर्म के नाम पर अन्य विश्वासों की अधिक मान्यता थी । ब्राह्मणों का भी समाज में पर्याप्त प्रभाव था । राजाओं की धर्म में आस्था थी । मुसलमानों के एकेश्वरवाद का भी समाज पर प्रभाव पड़ा था । सगुण और निर्गुण भक्ति के बीच समन्वय अधिक मात्रा में हो रहा था ।

लोक विश्वास और लोक त्योहार—समाज में कुछ ऐसी विशिष्ट चिन्तन परम्पराएँ पनपती रहती हैं जो आगे चलकर लोक विश्वासों में परिणित हो जाती हैं । मीराँ का युग एक ऐसा युग था जब राजस्थान में भक्ति और वीरत्व का

प्राधान्य था। राजपूत पूर्वजन्म में विश्वास करते थे। मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग एव अप्सराओं की कल्पना उनके लिये एक विशेष महत्व रखती थी।

जनता को जादू टोने पर बहुत अधिक विश्वास था। वे जंत्र-मंत्र में भी विश्वास रखते थे—

जनता में अंध विश्वासों की प्रचुरता थी। कौए का बोलना शुभ समझा जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि किसी के घर मेहमान आ रहे हों या कोई खत आ रहा हो तो कौआ पहले ही सूचित कर देता है। कौवे का स्मरण इस लिये ही किया जाता है कि किसी के आने की आशा का संचार हो। आँख फड़कने के संबंध में भी विशेष मान्यताएँ थी।

लोक त्यौहारों की चर्चा भी मीराँ के पदों में मिलती है। होली सबसे अधिक लोक त्यौहारों के रूप में मनाया जाता था। गणगौर का त्यौहार भी बहुत अधिक लोक प्रिय है—

१. **जनत करो जन्तर लिख बाँधो, ओखद लाऊं घसिके।**

२. **जन्तर मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरति बसिके॥**

जनता को शुकनों में विश्वास था। अपने करने के पहिले वे शुकनों पर दृष्टि डालते थे—

३. **थारा शब्द सुहावण रे, जो पीव मेला आज**
चाँच मड़ाउँ: थारी सोवनी री, तू मेरी सरताज॥

४. **प्रीतम कूं पतियाँ लिखूं रे, कउवा तू ले जाय।**

१. **रे साँवलिया म्हारें आज रंगीली गणगौर छै।**

२. **होली पिया बिन लागाँ री खारी।**

३. **किण संग खेलूं होली पिया तजि गये अकेली।**

मीराँ के पदों में युग की साँस्कृतिक चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है मीराँ के पदों में मानव स्वभाव की व्यन्जना की गई है। राजस्थान की साँस्कृतिक चिन्तन धारा का सजीव चित्रण मीराँ के पदों में मिलता है।

१६

मीराँ नाम और उसकी व्युत्पति और मीरां सम्प्रदाय

नाम में क्या रखा है। जिसे हम गुलाब कहते है, वह किसी दूसरे नाम से भी वैसी ही सुगन्ध देगा।—शेक्सपियर.

मीराँ के नामकरण और व्युत्पति को लेकर साहित्य जगत में एक विवाद बहुत समय से चल रहा है। मीरां का नामकरण किस आधार पर हुआ और उस शब्द की व्युत्पति किस प्रकार हुई है ? इस पर सभी विद्वान एक मत नहीं है। सभी विद्वान जब इस संबंध मे एक मत नहीं हैं तो यह उचित होगा कि उन विविध मतों को इस क्रम से प्रस्तुत किया जाय—

१. **डा० पीताम्बरदत्त का बड़थ्वाल का मत**—मीराँ शब्द की व्युत्पति पर सर्वप्रथम स्व० डा० बड़थ्वाल ने ही चर्चा की थी। उन्होने मीराँ शब्द की व्युत्पति फारसी शब्द मीर से मानी है। साथ ही उन्होने बाई का अर्थ लगाया पत्नि और इस प्रकार तुक मिलाकर उन्होने मीराँबाई का अर्थ दे दिया—ईश्वर की पत्नि।

—सरस्वती, भाग ४०, अंक ३. पृ० २११-१३

२. पं० के० का० शास्त्री मीराँ के मूल रूप मिहिर की संभावना प्रकट करते हैं।

—कवि-चरित नागर

३. प्रो० नरोत्तम स्वामी प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण के आधार पर मीराँ का मूल रूप वीराँ मानते हैं। राजस्थानी साहित्य, उदयपुर वर्ष १ अंक २

४. पुरोहित हरिनारायण जी की धारणा है कि मीराँ के नाम अजमेर शरीफ के सिद्ध मीर शाह की मनौती के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण दिया गया है।

—संतवाणी पत्रिका वर्ष १ अंक ११ पृ० ३१-३२

५. **परशुराम चतुर्वेदी का मत**—चतुर्वेदी जी के मतानुसार वास्तव में अब तक उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मीराँबाई का मीराँ नाम माता—पितादि का दिया हुआ जान पड़ता है। बाई शब्द उसमें सम्मान प्रदर्शन के लिये जोड़ दिया गया है। इसे उपनाम कहने के लिये कोई कारण नहीं मीराँ शब्द का मूल रूप भी फारसी का मीर शब्द भी रहा होगा जिसका बहुवचन मीरां आँ प्रत्यय लगा कर बनाया गया है। मीराँवाई ने स्वयं अपनी रचनाओं में मीराँ ही कहा है।

—मीराँ बाई की पदावली पृ० २३४

६. **श्री ललिता प्रसाद सुकुल का मत**—सुकुल जी ने मीराँ की व्युत्पति के लिये सर्व प्रथम मेढ़ता शब्द की व्याख्या की है। व्याकरण के नियमों के आधार पर उन्होंने मेढ़ता शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की है---

१. मेरू+त या मेरू +ता – मेरूता,

या २. मेरू+तक् – मेरूतक,

३. मीर+ता – मीरता,

उनके अनुसार मेड़ता के उपर्युक्त तीनों आधारो पर विचार किया जाय तो सिद्ध—मेरूता शब्द के विविध अर्थ कुछ इस प्रकार ठहरेंगे—

१. मेरूतया, मैरूता का अर्थ होगा, किसी पर्वत का पार्श्व भाग या उसकी तराई या उसकी किसी पर्वत विशेष का गन्तव्य मार्ग—

२. मेभतक का अर्थ होगा- छोटा पर्वत या पहाड़ी—

३. तृतीय आधार है मीर+ता मीरता। मीर शब्द का अर्थ सस्कृत कोष के अनुसार है—जलराशि, समुद्र, किसी पर्वत या कोई भाम, सीमा और पेय विमेष—

मीराँ की जल के समान सौम्य सुन्दरता और निर्मलता देखकर रावदूदा जी ने उन्हें मीराँ कहा होगा। और यही शब्द बारम्वार सम्बोधन वाचक होने के कारण और परम आकर्षण कालिका मीराँ के लिए होने के निमित्त केवल मीर न रहकर मीराँ प्रसिद्ध हुआ होगा। मीराँ स्मृति ग्रन्थ मीराँ—निरूक्त पृ० ४१-४२

७. श्री महावीर सिंह गहलोत मीराँ को सागर या महान श्रेष्ठ धर्म में लेते हैं और यथा नाम तथा गुण के अनुसार मीराँ की व्युत्पति मानते हैं। मीराँ—जीवनी और काव्य पृ० १६—

८. श्री ब्रजरत्नदास मीर या मीराँ शब्द को संस्कृत का मानते हैं, और इसकी व्युत्पति भी या मि +इरा मीराँ बनता है। और इसी के आधार पर नामकरण किया गया हैं। मीराँ माधुरी पृ० ८७-८९

९. दलाल जेठालाल वाडीलाल के अनुसार मीरां के जन्म के समय अलौकिक प्रकाश का बिम्ब दिखलाई पड़ा था, जिससे कुमारी का नाम मही+इरा अर्थात् मीराँ रखा गया।

१०. श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा के अनुमार मीर शब्द अरबी का भी है।

—मीरां-स्मृति ग्रन्थ ५२-५३

सर्व प्रथम डा० बडथ्वाल ने इस प्रश्न को चर्चा का विषय बनाया और धीरे-धीरे अनेक विद्वानों ने अपनी विचार धाराओं को प्रस्तुत किया। वास्तव में यह इतना अनिवार्य नही है कि माता—पिता अपने बच्चे के नामकरण के लिये विशेष खोज बीन और विश्लेषण करे। हम ऐसे अनेक नाम लोक परम्परा में पाते हैं जिनका कोई भी अर्थ नहीं होता है। नामकरण युग प्रचलित नाम के आधार पर ही कर दिया गया होगा। अत: साधारणत: या मीरां नाम को इतने रहस्यमय समझने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मीराँ और मीराँ सम्प्रदाय—शिष्टानुशिष्टोपदिष्टो मंत्र: सम्प्रदाय: अर्थात् पूर्व आचार्यों के समीप प्राप्त मंत्र और साधना का नाम ही सम्प्रदाय है।

—एक विद्वान

विलसन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि राजस्थान के और कहीं-कहीं गुजरात के क्षेत्र में मीरां सम्प्रदाय के अनुयायी पाये जाते हैं। इसी प्रकार की विचार धारा कुछ अन्य विद्वानों ने भी प्रस्तुत की।

मीराँ और मीराँ सम्प्रदाय की नवीन विचार धारा को देखकर इस सम्बन्ध में चिन्तन, मनन और अध्ययन किया गया। मीराँ का जीवन युग और परम्परा के विशलेषण से हमें यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि मीराँ ने इस नाम का न तो कोई सम्प्रदाय चलाया और न ही मीराँ के पश्चात् भी मीराँ-सम्प्रदाय का उद्भव और विकास हुआ।

मीराँ के साहित्य और जीवन के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मीराँ की विचारधारा स्वच्छन्द थी। वह स्वयं किसी सम्प्रदाय में दिक्षीत नहीं हुई तो दूसरे को वह एक विशेष सम्प्रदाय में दिक्षीत करेगी ऐसी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है। मीराँ का विश्वास है कि व्यक्ति के आधार पर ही उसका नाम इस दुनिया में रह जायेगा। मीराँ के संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

नाम रहेना काम से सुनो सयाने लोय।
मीराँ सुत जायो नहीं शिष्य न मुंडया कोय॥

इस प्रकार की प्रचलित लोक भावना भी इसी बात का समर्थन करती है कि मीरां ने किसी सम्प्रदाय की रचना नहीं की थो। मीरां के जीवन का तो एक मात्र उद्देश्य था अपने प्रिय गिरधर नागर को प्राप्त करना—अतः मीराँ के चिन्तन का मूल केन्द्र विन्दु कृष्ण था। मीराँ के पश्चात् उसकी कोई शिष्य परम्परा दिखाई नहीं देती तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि मीरां-सम्प्रदाय की विचारधारा आई कैसे ? इसके प्रमुख दो कारण हो सकते हैं—

१. अजमेर वाले मीर शाह की लोकप्रियता और शिष्यों की परम्परा से संभवतः इस प्रकार भ्रम होगया होगा कि ये मीर के अनुयायी मीराँ सम्प्रदाय के व्यक्ति हैं। पर वास्तव यह अटकल बाजी सही नहीं है।

२. मीराँ की बहुत अधिक लोकप्रियता भी इस प्रकार के भ्रम का एक कारण हो सकती है। मीराँ के पद आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं और हजारों की संख्या में लोग उनके पदों को गाकर आनन्दित होते हैं। मीराँ के इस प्रकार की लोकप्रियता ने भी संभव है कि भ्रम पैदा किया हो और उन गाने वाले वन्धुओं को मीराँ सम्प्रदाय के अनुयायी मान लिया गया हो।

उपर्युक्त दोनों मत बिना किसी विशेष अध्ययन के केवल मात्र कल्पना पर आधारित हैं। यदि मीराँ के जीवन, साहित्य और युग चिन्तन का विश्लेषण करें तो हमें आश्चर्य होगा कि मीराँ जो सम्प्रदायवाद के विरोध मे थी, उस पर सम्प्रदाय चलाने की भावना ही कैसे की जा सकती है।

१७

लोक-साहित्य और मीराँ

लोक शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से होता ग्राया है। लोक शब्द सम्पूर्ण लोक का प्रतिनिधित्व करता है। लोक से संबन्धित साहित्य को हम लोक-साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं। हमारी आदिम सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक लोक-साहित्य अपनी मौखिक परम्परा के आधार पर जन-जीवन के साथ ही साथ प्रगति की ओर बढ़ रहा है। अध्ययन को सुविधानुसार लोक-साहित्य को पाँच भागों में विभाजित किया गया है—लोक गीत, लोकगाथा, लोक कथा, लोक नाट्य और लोक सुभाषित। लोक-साहित्य के अध्ययन और विश्लेषण से हमें युग सत्य का पता लग सकता है।

लोक-साहित्य और मीराँ से हमें स्पष्टतः दो विचार धाराओं को प्रस्तुत करते हैं—१—मीराँ के साहित्य में लोकतत्व और २—लोक-साहित्य में मीराँ संबन्धी प्राप्त सामग्री। अब हम दोनों प्रमुख विचारधाराओं की व्याख्या करेंगे—

१. **मीराँ के साहित्य में लोक तत्व**—मीरां के पदों में हमें लोकतत्त्वों के स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। लोक प्रचलित चिन्तन धारा अपने को किसी न किसी रूप में साहित्य में प्रगट करती ही रहती है। पूर्व जन्म और पुर्नजन्म में मीराँ को विश्वास है। स्वर्ग और नरक की सीमायें युग के मानव मन की गहराइयों को व्यक्त करती हैं। मीराँ भी समाज में प्रचलित लोक विश्वासों से दूर नहीं है। वह भी आम जनता की तरह सोचती है किसी न किसी प्रकार जन्तर मन्तर से भी अपने प्रिय को प्राप्त कर लूं। शुकनों में भी मीराँ विश्वास रखती है। लोक संस्कृति की झलक भी हमें मीरां के पदों में मिलती है।

---

१. जतन करो जन्तर लिख बांधो, ओखद लाऊँ घसिके। मीराँ
२. अन्तर मन्तर जादू टोना, माधुरी-मुरति बसिके। मीराँ

२. **लोक-साहित्य में मीराँ सम्बन्धी प्राप्त सामग्री**—मीराँ का सम्बन्ध राजस्थान के सुप्रसिद्ध राजघरानों से था, अतः उनकी प्रसिद्धि अनायास ही हो गई थी। मीराँ का युग भक्ति का युग था और मीराँ स्वयं उच्च कोटि की भक्त थीं। मीराँ के व्यक्तित्व में, वाणी में और गीतों में एक अजीब आकर्षण था जो श्रोताओं को मुग्ध कर लेता था। मीराँ के प्रति लोक मानस में आदर था, श्रद्धा थी और थी अनन्य भक्ति। मीराँ समाज की एक महत्व पूर्ण बात हो गई। मीराँ का क्रान्तिकारी कदम वास्तव में लोक के लिये वाद-विवाद का विषय था।

मीराँ के सम्बन्ध में समाज अपनी विविध भावनाएँ व्यक्त करता था। लोक-गीतों ने मीराँ की महत्ता को गाया। लोकगीतों में मीराँ के जन्म, विवाह, यातनाएँ और अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है। लोकवार्ताओं में भी मीराँ की चर्चा स्थान स्थान पर की गई है। आज भी मीराँ से संबन्धित गीत अधिक मात्रा में मिलते हैं। राजस्थान के गांवों में चले जाइये और मौखिक परम्परा से प्राप्त लोक-साहित्य निधि का श्रवण कीजिए, आप मीराँ के प्रति लोक मानस की भावनाओं को देखकर आश्चर्य किये बिना नहीं रह सकते।

अत्याधिक लोकप्रियता के कारण मीराँ के संबंध में कुछ भ्रमपूर्ण सामग्री का प्रचलित होना भी आश्चर्य की वस्तु नही क्योंकि—

१. लोक साहित्य अपनी मौखिक परम्परा के साथ आगे बढ़ता है। और परिस्थिति और पात्र के साथ उनका कुछ न कुछ रूप परिवर्तन हो ही जाता है—

२. मीराँ की महत्ता को बढ़ाने के लिये नवीन घटनाओं का निर्माण किया जाता रहा है—

३. सांप्रदायिक भावना से प्रभावित होकर कुछ ऐसे साहित्य का सृजन किया गया है। जिससे यह सिद्ध हो सके कि मीराँ उस सम्प्रदाय से संबंधित थीं—

अतः मीराँ से संबन्धित प्राप्त सामग्री का अध्ययन और विश्लेषण बड़ी सावधानी से होना चाहिए। प्राप्त तथ्यों को तुलनात्मक अध्ययन द्वारा परखना भी अनिवार्य है। इस प्रकार के साहित्य का अध्ययन और संकलन भी शीघ्र हो जाना चाहिए।

१८

मीराँ के साहित्य में संगीत

मानव को प्रकृति का प्रवाह संगीतमय प्रेरणा देता रहा है। संगीत का मानव के जीवन से इतना निकट संबध है कि वह अपने दैनिक जीवन का एक महत्व पूर्ण अग हो गया है। संगीत और मानव का संबंध हरदेश काल और परिस्थितियों में रहा है। मानव हृदय की अनुभूतियाँ संगीत का सहारा पाकर खिल उठती है। जीवन का कोई पर्व हो संगीत को वहाँ प्राथमिकता दी जाती है। बचपन मे संगीत मय लोरियों से शिशुओं को दुलारा जाता है। प्रेम प्रणय और अन्य उत्सवों में संगीत के स्वर ही लहराया करते हैं। रण क्षेत्र में रणवाद्य और भैरव संगीत उन्हें कर्म की प्रेरणा देते हैं। कुल मिलाकर जीवन के सभी क्षेत्रों में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है।

श्रेष्ठ मानव के लिये साहित्य, संगीत और कला का ज्ञान होना अनिवार्य है। साहित्य और संगीत का बहुत गहरा संबंध है। साहित्य वह संगीत है जो कि मानव के अंतस्थल से इसलिए निसृत होता है कि वह भाषा के माध्यम से जीवन के साथ अपना सामंजस्य स्थापित कर सके। संगीत और कविता दोनों ही मानव की आत्मा को शान्ति और आनन्द प्रदान करते हैं। एड्लर एलेन पो ने लिखा है संगीत जब आनन्द दायक विचारों से युक्त होता है। तब उसे कविता कहते हैं। कविता में संगीत के तत्वों का समावेश रहता ही है, कभी व्यक्त रूप में कभी अव्यक्त रूप में।

संगीत का संबध गीतिकाव्य से विशेष रूप में मिलता है। गीति काव्य के तत्वों में संगीत का भी महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत के अभाव में गीति के सौन्दर्य एवं

---

१. साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षातः पशुपुच्छ विशाषणहीनः भतृहरि

मधुरता में कुछ अभाव सा खटकने लगता है। गीति-काव्य के इतिहास को देखने से पता चलता है कि गीति को प्रारभ से ही संगीत का सहारा रहा है। गीति काव्य और संगीत के संबंधों को दृष्टि में रखते हुए हम मीराँ के साहित्य में संगीत योजना को प्रस्तुत करेंगे।

मीराँ ने जिस युग में जन्म लिया वह युग साहित्य और संगीत के लिये स्वर्ण युग कहा जा सकता है। मीराँ ने युग में साहित्य, संगीत और कला अपने विकास की चरम सीमा पर थीं। मीराँ का जन्म और विवाह राजस्थान के सुप्रसिद्ध राजघरानों में हुआ था। राजघरानों का संगीत प्रेम तो सर्व विदित हो है अतः मीराँ को संगीत की उच्च शिक्षा मिली थी यह अपने आप सिद्ध हो जाता है।

मीराँ के पदों में आन्तरिक संगीत की स्वर लहरी में आकर्षण और प्रभाव है कि वह आज भी पाठक को आत्म विभोर कर देती है। मीराँ ने अपने पदों में विभिन्न राग-रागनियों का प्रयोग किया है। मीराँ द्वारा प्रयुक्त राग-रागनियो की सूची डा० सावित्री सिन्हा ने इस प्रकार प्रस्तुत की है—"तिलंग, ललित, हमीर, कान्हारा, त्रिवेनी, गूजरी, नीलाम्वरी, कामोद, मुलतानी, मालकोस, झिझोटी, पटमंजरी, गुनविलावल, सोरठ, प्रभाती, श्याम-कल्याण, रामकली, मलार, जोगिया, होली, सारंग, आनन्द भैरो, वागेश्वरी, खम्भावती, देरू आसावरी, टोड़ी, भीम, पलासी, देस, मारवा, दरबारी, भैरवी, कलिंगड़ा, परंज कजरी छाया टोडी, हंस, नारायण, मारू. जौनपुरी, जैवंती, छायानट, राग श्री, घना श्री।"[1]

मीराँ ने रागों का प्रयोग विषय के अनुरूप ही किया है। पर अष्टछाप कवियों की साम्प्रदायिकता सीमा मीराँ के संगीत योजना को नहीं बाँध नही सकी अतः कुछ ऐसे रागों का प्रयोग भी मीराँ में नहीं किया गया है जो अष्टछाप कवियों में नहीं है। मीराँ के पदों में कविता की लय और संगीत की लय का सामंजस्य दिखाई देता है। मीराँबाई का मल्हार-राग तोआज भी बहुत अधिक लोक प्रिय है।

मीराँ के गीतिकाव्य में संगीतात्मकता का सुन्दर निर्वाह हुआ है। संगीत के लय, राग और धुनों के लिये कई बार शब्दों को तोड़ा मरोड़ा भी गया है। मीराँ की आन्तरिक वेदना अपनी चरम सीमा पर थी। अपनी अभिव्यक्ति के लिये उसने भाषा को माध्वम चुना। पात्रों के रूप में जब आत्मा के गीत उमड़ने लगे तो उन्हें संगीत का सहारा मिला काव्य और संगीत के इस सांजस्य ने मीराँ की कला को अमर बना दिया।

---

१. ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प—डा० सावित्री सिन्हा पृ० ३७६.